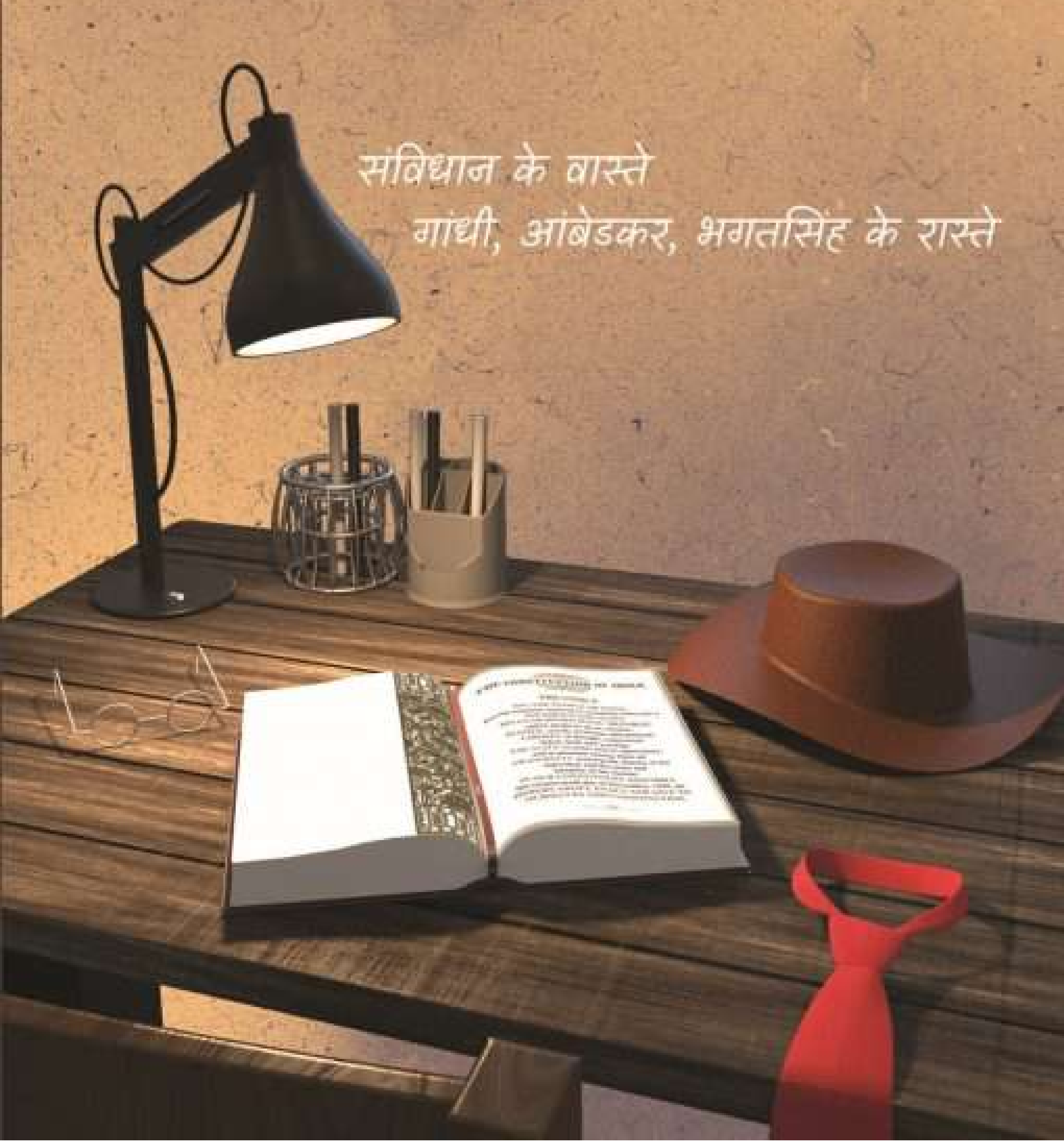
देस हरियाणा

ISSN 2454-6879

मूल्य - 40/-

अंक: 27 - 28, जनवरी - अप्रैल, 2020



ISSN 2454-6879

देसहरियाणा
साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

सम्पादक
सुभाष चंद्र

सह-संपादक
अरुण कैहरबा

सम्पादन सहयोग
जयपाल, कृष्ण कुमार, अविनाश सैनी, राजकुमार जांगड़ा

सलाहकार
प्रो. टीआर कुंडू, सुरेन्द्रपाल सिंह, परमानंद शास्त्री, अशोक भाटिया,
सत्यवीर नाहड़िया, जगदीश आर्य

प्रबंधन
विपुला, विकास साल्याण, योगेश शर्मा

प्रसार
सुनील, इकबाल, राजेश कुमार, ब्रजपाल

पता :
देस हरियाणा, 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)-136118
संपर्क : संपादकीय - 94164-82156. व्यवस्था - 90501-82156

Website: desharyana.in
ई-मेल : haryanades@gmail.com
facebook.com//desharyana, youtube.com//desharyana

सहयोग राशि

व्यक्तिगत: 1 वर्ष 300/- (पंजीकृत डाक खर्च समेत)
संस्था: 1 वर्ष 500/- (पंजीकृत डाक खर्च समेत)
आजीवन: 5000/-
संरक्षक : 10000/-

देस हरियाणा के ऑनलाईन भुगतान के लिए

Account Name - Satyashodhak Foundation
Bank Name - Allahabad Bank, Kurukshetra
Account No. - 50490177180
IFSC: ALLA0211940

स्वामी-प्रकाशक - मुद्रक सत्यशोधक फाउंडेशन, 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा

अनुक्रम

संपादकीय के बहाने

हम भारत के लोग
गांधी, आंबेडकर और भगतसिंह के रास्ते

हम, भारत के लोग,
भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए,
तथा उसके समस्त नागरिकों को:
सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता, प्राप्त कराने के लिए,
तथा
उन सब में, व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित कराने वाली, बन्धुता बढ़ाने के लिए,
दृढ़ संकल्पित होकर अपनी संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत दो हजार छह विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

भारत के संविधान की प्रस्तावना की ओर आम नागरिकों का शायद ही पहले कभी इतना ध्यान गया हो। भारत के नागरिकों को आजादी एक लंबे संघर्ष और अनेक शहीदों के बलिदान के बाद हासिल हुई थी। सन् 1857 से सन् 1947 तक आम नागरिकों, नेताओं और राजनीतिक विचारधाराओं की भागीदारी से स्वतंत्रता हासिल हुई थी। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी, शहीद भगतसिंह, बाबा साहेब डा. भीमराव आंबेडकर और हिंदू-मुस्लिम साम्प्रदायिक चिंतनधाराओं और विभिन्न नेताओं में स्वतंत्रता के बाद भारतीय राज्य के स्वरूप पर गंभीर बहस थी और वर्ग हितों के लेकर परस्पर खींचतान भी थी।

भारत को जब आजादी मिली और डा. भीमराव आंबेडकर के नेतृत्व में संविधान बना, उसमें स्वतंत्रता-आंदोलन में शामिल विभिन्न वर्गों की आकांक्षाओं को भारतीय स्वराज की परिकल्पना में समाहित किया गया। लोकतंत्र, समता, भाईचारा, सामाजिक न्याय, धार्मिक सहिष्णुता, लैंगिक समानता, आर्थिक आत्मनिर्भरता, सांस्कृतिक-भाषायी विविधता का सम्मान जैसे मूल्यों को भारतीय संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट तौर पर रेखांकित करते हुए "संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित" किया गया।

भारत के स्वतंत्रता सेनानियों ने आजादी के बाद धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र को इसीलिए अपनाया, क्योंकि सच्चे लोकतंत्र का महल समानता की बुनियाद पर ही बनाया जा सकता है। यदि भारत के नागरिकों को राज्य की ओर से किसी प्रकार के भेदभाव की आशंका हो तो स्वाभाविक है कि संविधान के संकल्प याद किये जायेंगे। पिछले दिनों नागरिकता संशोधन कानून को लेकर

महिलाएं और नौजवान सड़कों निकले। न उन्होंने कड़ाके की सर्दी की परवाह की और न बारिश की।

इस आंदोलन के भारतीय समाज को कई प्रकार से लाभ मिलने वाले हैं। इससे लोकतंत्र को मजबूती तो मिली है। किसी देश के नागरिक यदि जागरूक हों तो राज्य की निरंकुशता तानाशाही में तब्दील नहीं हो पाती। पिछले कुछ दशकों में लोकंतंत्रों को तबाह होते देखा गया है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि समाज का सबसे पिछड़ा हिस्सा जागरूक होता है तो समाज में बड़े परिवर्तन की आहट होती है। भारतीय सामाजिक और पारिवारिक जीवन में महिलाओं विशेषकर मुस्लिम महिलाओं की भागीदारी किसी से छुपी नहीं है। जब ये महिलाएं सड़कों से अपने घरों को लौटेंगी तो ये अपने साथ एक नई चेतना और उत्साह लेकर जाएंगी। ये परिवारों की सामंती ठसक में अपनी वैयक्तिक गरिमा को कुचलने नहीं देंगी।

यह बात सही है कि आंदोलनों से दैनिक जीवन में कुछ दिक्कतें तो जरूर आती हैं, विशेष तौर पर उन 'दोपायों' को जो पेट-प्रधानता की गर्त में गहरे डूब चुके होते हैं। लेकिन इतिहास गवाह है कि सामाजिक जीवन में जमी काई और कीच को भी आंदोलनों ने ही साफ किया है। भारत की आजादी तो अनेक आंदोलनों का ही सुखद परिणाम है। यूं तो आजादी के आंदोलन को भी अराजकता कहने वाले, उससे दूर रहने वाले, उसके खिलाफ षड़यंत्र करने वाले और स्वतंत्रता चेतना को धूमिल करने के लिए लोगों को साम्प्रदायिक दंगों में धकेलने वाले भी रहे ही हैं। यह कोई संयोग तो नहीं कि राष्ट्रीय-आंदोलन के दौरान जब भी कोई बड़ा संघर्ष हुआ उसके तुरंत बाद ही सांप्रदायिक दंगे भी हुए। हिंदू-मुस्लिम साम्प्रदायिक शक्तियों ने तो आजादी का जश्न भी नरसंहार के साथ मनाया था। इतने सालों बाद भी लोगों की स्मृति में यह 'आजादी का साल' नहीं बल्कि 'मारकाट का साल' के तौर पर दर्ज है।

दिल्ली में दंगे होना कोई आश्चर्य नहीं है। साम्प्रदायिक दंगों की जांच रिपोर्टें स्पष्ट तौर पर बताती हैं शासन-सत्ताएं अपने तुच्छ राजनीतिक स्वार्थों के लिए साम्प्रदायिक-दंगों के आयोजन में शामिल रही हैं। दुर्भाग्य तो ये है कि भारत की जनोन्मुखी संवैधानिक संस्थाएं भी सत्ता उन्मुखी होती जा रही हैं।

चिंता की बात है कि भारतीय समाज में अनेक कारणों से हिंसाखोरी बढ़ रही है। शातिर नेता अपने राजनीतिक हितों के लिए युवा पीढ़ी को हिंसा की ओर धकेल रहे हैं। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी, डा. भीमराव आंबेडकर और शहीद भगत सिंह के विचारों ने लोगों को अपनी आकर्षित किया था। बदली हुई परिस्थितियों में यदि ये समाज में रचनात्मक भूमिका निभाना चाहती हैं तो अपनी विचारगत संकीर्णताओं का परित्याग करके इनके समुच्य हासिल के आधार पर ही संभव होगा। अपनी-अपनी लीक पीटती रही तो इतिहास के कूड़ेदान में जाने से इन्हें कौन रोक सकता है।

हरियाणा सृजन उत्सव और यात्रा

यह अंक देसहरियाणा पत्रिका और सत्यशोधक फाउंडेशन द्वारा आयोजित किये जाने वाले 'हरियाणा सृजन उत्सव-4' के अवसर पर आ रहा है। गांधी, आंबेडकर, भगतसिंह के चिंतन की सांझी जमीन, विश्वविद्यालय परिसरों का माहौल और शैक्षिक परिदृश्य, हरियाणवी समाज सृजन और बौद्धिक उदासीनता विषय पर परिसंवाद होंगे। कविता सम्मलेन, नाटक, रागनी, गीतों की प्रस्तुतियां होंगी। यह उत्सव हरियाणा और आस पास के प्रदेशों के सृजनकर्मियों के आर्कषण का केंद्र बन रहा है।

सृजन उत्सव से पूर्व 'सत्यशोधक फाउंडेशन' और 'देस हरियाणा' पत्रिका की ओर से 29 फरवरी से 1 मार्च तक 'हरियाणा सृजन यात्रा' सृजन यात्रा सृजन आयोजित की जा रही है। यह यात्रा करनाल, पानीपत, रोहतक, झज्जर, रेवाड़ी, हिसार, जींद, कैथल तथा कुरुक्षेत्र से गुजरेगी। प्रदेश के साहित्यकार, रंगकर्मी, कलाकार इस यात्रा शामिल रहेंगे। यात्रा के दौरान मशहूर शायर मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली की पानीपत स्थित मज़ार पर, गुड़ियानी स्थित प्रख्यात साहित्यकार व पत्रकार बाबू बालमुकुंद गुप्त की हवेली पर, झज्झर जिले में कबीर परंपरा के कवि संत गरीबदास के छुड़ानी धाम पर तथा बाबा फरीद की साधना स्थली हांसी में चार कुतुब में विचार संगोष्ठी होगी।

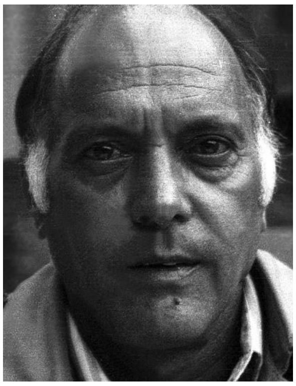
आशा है ये अंक आपको पसंद आयेगा।

सुभाष चंद्र

कहानी

रफूजी

◆ स्वदेश दीपक



नाटककार, उपन्यासकार और कहानीकार स्वदेश दीपक (1942 में जन्मे) हिंदी साहित्यिक परिदृश्य पर 1960 के दशक के मध्य से सक्रिय रहे। 26 साल अम्बाला के गांधी मेमोरियल कालेज मे अंग्रेजी साहित्य पढ़ाया। 2004 में संगीत नाटक अकादमी सम्मान से सम्मानिय किया गया। 2 जून 2006 की सुबह सैर के लिए निकले और आज तक वापस नही लौटे।

- **कहानी संग्रह- अश्वारोही, मातम, तमाशा, प्रतिनिधि कहानियां, बाल भगवान, किसी अप्रिय घटना का समाचार नहीं, मसखरे कभी नहीं रोते, निर्वाचित कहानियां**
- **उपन्यास- नंबर 57 स्क्वाड्रन, मायापोत**
- **नाटक- बाल भगवान, कोर्ट मार्शल, जलता हुआ रथ, सबसे उदास कविता, काल कोठरी**
- **संस्मरण- मैंने मांडू नहीं देखा**

देस हरियाणा के पाठकों के लिए प्रस्तुत है उनकी एक कहानी

नानी बिलकुल अनपढ़। अस्सी के ऊपर आयु होगी, लेकिन अंग्रेजी के कुछ शब्द उसे आते हैं - जैसे कि रिफ्यूजी, जिसे वह रफूजी बोलती है।

कुछ शब्द इतिहास की उपज होते हैं, जो प्रतिदिन की जिंदगी का हिस्सा बन जाते हैं। ये शब्द राजा अथवा रानी की देन होते हैं। अंग्रेज जाते-जाते बँटवारा करा गए और विरासत में एक शब्द दे गए - रिफ्यूजी। जैसा कुछ वर्ष पहले हमारी महारानी मरी और विरासत में एक शब्द दे गई - उग्रवादी।

सारा कस्बा उसे नानी कह कर बुलाता है। शायद परिवार के सदस्यों के अलावा किसी को भी असली नाम मालूम या याद नहीं। जिस्म के सारे हिस्से जिस्म का साथ छोड़ चुके हैं सिवा आवाज के। फटे ढोल की तरह की आवाज - एकदम कानफाड़ और ऊँची।

बेटे तो बँटवारे की भेंट चढ़ गए, एक लड़की बची थी, इसलिए कि विभाजन से पहले वह जालंधर में ब्याही गई। अब यह भी नहीं। उसके बेटे, अपने दोहते के साथ नानी रहती है, इस कस्बे में। कलेमों में थोड़ी जमीन मिल गई, मकान भी बनवा लिया। दोहता कॉलेज में पढ़ाता है, लेकिन नानी उसे प्रोफेसर नहीं, मास्टर कह कर बुलाती है। उसकी समझ में सब पढ़ानेवाले मास्टर ही होते हैं। वह जालंधर के कॉलेज में, जो यहाँ से दस किलोमीटर दूर है, रोज पढ़ाने जाता है, स्कूटर पर।

नानी आँगन में नीम के पेड़ के नीचे लेटी हुई। बच्चे स्कूल जा चुके हैं, अपनी माँ के साथ, जो उसी स्कूल में पढ़ाती है।

आँगन में कदमों की आवाजें। नानी कमर पर हाथ रख चारपाई पर अध-उठ गई। अध-अंधी है। नजर बाँध कर कदमों को, आवाजों को, जिस्मों के साथ जोड़ने की कोशिश की, लेकिन कोशिश, नाकाम।

'कोण। किस नूँ मिलना है? घर कोई नहीं। शाम नूँ आणा।'

नानी की आवाज सुन कर नीम पर बैठे कौवे ने गर्दन घुमाई। कहीं कोई खतरा नहीं। फिर भी एक टहनी से दूसरी टहनी पर छलाँग गया।

'नानी, तेरी तो आँखें भी गईं। चल, फिकर न कर, आँखों के बैंक से किसी जवान कुड़ी की आँखें तुझे डलवा देंगे। मरने से पहले जहान तो देख लेगी।'

'जीते, तू मोया साठ का हो गया, लेकिन जबान अब भी कैंची की कैंची। मैं मरनेवाली नहीं। तेरा संसकार करके ही जाऊँगी। खातिर जमा रख।'

'नानी, बैंक से आँखें ला दूँ? एकदम जवान हो जाएगी।'

'कौन। मल्कियत। नानी को जवान बनाएगा। मोया फिर सात फेरे भी लेगा ना। तेरी घरवाली तो कब की मर गई, मुझे घर ले चलना। इस उमर में लुत्तर-लुत्तर तो बंद होगी।'

सरपंच सुरजीत सिंह ने नीम के नीचे दूसरी चारपाई बिछाई, तहमद टखनों तक खींची और पसर गया। नानी को फिर छेड़ा, 'नानी, बैंक से आँखें...'

'चुप ओए मोया। जीभ में कीड़े पड़ेंगे कीड़े। मुझे बेवकूफ बनाता है। बंक में तेरे बाप रुपए देते हैं कि आँखें...? तू तो अपनी माँ को भी ऐसे ही छेड़ता था।'

नानी को अचानक याद आया कि मल्कियत सिंह बिलकुल चुप है। जरूर कोई बात होगी, वरना यह तो कैंची है, कैंची - लगातार चकट-चकट करती हुई।

'मलकीते, तैनूँ साँप क्यों सूँघ गया है। बोलता क्यों नहीं। रात बोतल नहीं मिली क्या? ठहर, मैं लस्सी लाती हूँ।' नानी ने उठने की कोशिश की।

'तू बैठी रह नानी, अब की उठी शाम तक अंदर से वापस आएगी। तेरे लारे और ब्याहे भी क्वारे।'

'मरजाँणा, बस महवारे डालना तो कोई तुझसे सीखे। अच्छा यह सवेरे-सवेरे यहाँ चढ़ाई किसलिए कर दी?'

सुरजीत और मल्कियत ने एक-दूसरे की तरफ पूछती निगाहों से देखा था - नानी से बात कौन करे? नानी ने उसकी चुप्पी को सूँघ लिया। उसे पता है इस इलाके के लोगों का एकदम चुप होना किसी बुरी बात के खतरे की निशानी होती है। वह थोड़ा-सा डर गई इसलिए और ऊँची आवाज में बोली -

'ओये मोये, जीभ तालू से क्यों चिपक गई? कुछ बकते क्यों नहीं? मेरे मास्टर की कही टक्कर तो नहीं लग गई?'

इस बार आवाज का धमाका इतना ऊँचा था कि कौवे बिलकुल डर गए। उडारी भर कर छत पर जा बैठे।

'नानी की बच्ची, मास्टर नहीं, प्रोफेसर कह। तुझे कितनी बार बताया है कि जो कॉलेज में पढ़ाए, उसे प्रोफेसर कहते हैं।'

'चुप्प ओये, बड़ा आया मुझे सीख देनेवाला। पढ़ाता ही है न, चाहे कालज-फालज में पढ़ाए, चाहे स्कूल में, मास्टर तो मास्टर होगा, थानेदार तो नहीं। अच्छा बताओ, की गल है?'

मल्कियत ने सुरजीत को कुहनी मारी कि तू ही बोल। 'सुन नानी, प्रोफेसर को समझा दे कि फालतू न बोला करे। आजकल ऐसी बातें करना ठीक नहीं।'

'क्या फालतू बोलता है, जरा मैं भी तो सुनूँ। सारा दिन तो किताबें चाटता रहता हैं। अभी से ऐनक चढ़ गई, बुड्ढा हो गया।'

नानी के लिए नजर की ऐनक नजर की शुरुआत है। 'नानी, उगरवादियों के खिलाफ सरेआम बोलता है। अपनी क्लासों में भी। गाँव के लड़के, जो कॉलेज में पढ़ते हैं, उन्होंने हमें बताया।'

'खलाफ बोलता है तो क्या बुरा करता है। अब सच बोलने पर करफ्यू लग गया है क्या?'

'नानी, लगता है तेरा दिमाग भी चल गया,' सुरजीत सिंह की आवाज सख्त हो गई, 'तुझे पता नहीं कि अब मुल्क में सच बोलने की मनाही है। बस दो टैम की रोटी खाओ, और जो दिन खैर-खरीयत से गुजर जाए, सच्चे पातशाह की किरपा समझो। लोगाँ के सिर पर खून सवार है। लेकिन तेरा पढ़ा-लिखा प्रोफसर तो झल्ला हो गया है, बोलने से बाज नहीं आता। क्या सरकार ने उसे सच का नंबरदार बना दिया है?'

नानी के अतीत से अपने पेड़ जैसे तीन लड़कों का अपनी आँखों के सामने कत्ल होने का दृश्य कूदा और उसकी अध-अंधी आँखों में ठहर गया। उसने पूरा जोर लगाया और चारपाई पर गठरी बन गई। आजकल जो कुछ हो रहा है, उसे वैसे भी समझ नहीं आता, लेकिन आतंक की बू को तो जानवरों तक की इंद्रियाँ ग्रहण कर लेती हैं। नानी को बहुत-सी बातें सुनाई तो देती हैं, कारण समझ न आए। उसने याचना भरी आवाज में सलाह दी -

'मलकीयते, तू ही समझा मास्टर को। तुमसे तो दबता है। मैं कुछ कहूँ तो जवाब तक नहीं देता। उसकी घरवाली भी कोशिश करती है, लेकिन पता नहीं उसे अंग्रेजी में क्या कहता है कि वह चुप हो जाती है। मेरी तो आखिरी निशानी है मेरा इंदर। उसे भी कुछ हो गया तो खानदान का बीज तक नाश हो जाएगा।' अब नानी बेआवाज रो रही है। चेहरे की गहरी झुर्रियों में आँसू गिर कर अटक गए।

'ओये नानो, उसे क्या होगा। हमारे गाँव में किसी हिंदू को आज तक किसी ने छूआ है क्या। मलकियते की दोनाली बंदूक को सारा दुआबा जानता है, समझी। दो कत्ल कर चुका है, दो।' उसने इतना ऊँचा बोला कि छत की मुँडेर पर बैठे कौवों ने इस बार लंबी उडारी भरी और मकान की हद से बाहर निकल गए।

'लेकिन नानी, बड़ा खराब वक्त चल रहा है। किसी पर भरोसा नहीं किया जा सकता। भाई को भाई शक्क की नजर से देखने लग पड़ा है। इस इंदर को हम भी समझाएँगे, लेकिन तू बात जरूर करना। चौरासी में जब दिल्ली में दंगे हुए थे, तो इंदर हिंदुओं के खलाफ सरेआम बोलता था न। तब भी हमने समझाया, लेकिन नहीं माना न। हिंदुओं ने ही

ईंट मार कर उसका सिर फोड़ दिया था। कितना खून चढ़ा, तब जा कर बचा। उसे बता कि आजकल झूठ का बोलबाला और सच का मुँह काला।' सुरजीत चारपाई से उठा, तहमद नीचे की। मल्कियत ने साफ देखा कि नानी के चेहरे पर से दहशत अब भी नहीं हटी।

'नानी, तू खातर जमा रख, हमारे होते चिड़ी भी गाँव में नहीं फड़क सकती। ऐसा सूरमा अभी किसी माँ ने पैदा नहीं किया, जो हमारे गाँव में आ कर उस पर हमला कर सके। लेकिन शहर से तो स्कूटर पर अकेला आता है न, कहीं रास्ते में...' मल्कियत ने अपनी बात पूरी करने की जरूरत नहीं समझी।

'अच्छा पुत्तरों, तुसी चलो, साईं रखे।'

दोनों ने आज पहली बार नानी को वहाँ से जाने से पहले छेड़ा नहीं।

कौवे फिर नीम के पेड़ पर लौट आए। काँव-काँव, रोटी दे-रोटी दे की रट लगा दी। नानी ने उन्हें गाली दी, 'मोये, मरे जाते हैं। थोड़ा-सा भी सबर नहीं।' चारपाई से उतरी। कमर पर हाथ रखे, लचीले बाँस का-सा दोहरा हो कर मुड़ गया शरीर अब अंदर की तरफ घिसटना शुरू हुआ। साथ-साथ यादें भी।

हाँ, दिल्ली के दंगों के बाद इंदर का सिर हिंदुओं ने फोड़ दिया। वह सरेआम उन्हें गालियाँ जो देता था। यह बात तो नानी को कल की तरह याद है। अभी अतीत की धूल इन दृश्यों पर जमी जो नहीं।

दिल्ली से सिखों के कुछ परिवार यहाँ के गुरुद्वारे में रफूजी बन कर आए थे। नानी भी गाँव की औरतों के साथ रोटियों की पोटली बना कर वहीं गई, उनसे मिलने। वह कही अतीत-वर्तमान के बीच जिंदा है। सहमी बैठी औरतों से पूछा था -

'क्यों, पाकस्तान ने आए हो जी?'

लुट-पुट कर आई एक बूढ़ी औरत का चेहरा तमतमाया, शायद कोई कड़ा जवाब देने लगी। गाँव की औरतों ने उसे सैनत की, अपने सिर को हाथों से छू कर इशारे से बताया कि नानी के दिमाग के पुर्जे ढीले हैं। एक ने समझाया, 'नानी, एह लोग दिल्ली से आए ने।'

नानी से अध-अंधी आँखें फाड़-फाड़ कर सबकी तरफ देखा। हथेली की छतरी आँखों के आगे हाथ से बनाई। कुछ बच्चों के सहमे हुए चेहरे दृष्टि-दायरे में आए। उसने फटे ढोल की आवाज में अपने गाँव की औरत को



डाँटा, 'दिल्ली तो आए ने? हाय रब्बा, यह दिल्ली में पाकस्तान कब बन गया। मुसलमानों ने मारा है?'

'न, नानी, हिंदुओं ने घर फूँक दिए, मरदों को जिंदा जला दिया।'

नानी ने एक बच्ची के सिर पर हाथ रखा। बच्ची सुबकना शुरू हो गई।

'न पुत्तर, रोंदे नहीं। देखना, कल जवाहरलाल आएगा। तुम सबको मकान देगा राशन भी देगा। हम पाकस्तान बनने पर कुलछेतर आए थे, हाँ। हर महीने जवाहरलाल कंप में आता था। एक साल में सब को फिर से बसा दिया। मेरी गल पल्ले बाँध लो। उसे पता चल गया होगा, कल जरूर आएगा।'

कुछ बच्चे हँस पड़े। एक ने दूसरे को इशारे से समझाया कि बुढ़िया बिलकुल पागल है। उस अधेड़ औरत ने नानी को बताया, 'नानी, जवाहालाल तो कब का मर गया, अब कहाँ से आएगा?'

'चुप्प नी, जवाहर जरूर आएगा। बड्डी आई नानी नू बेवकूफ बनाणवाली।'

अपने गाँव की औरत ने याद दिलाया, 'नानी, तेरे दिन पूरे हो गए लगते हैं। तुझे तो कुछ याद नहीं रहता। ट्रक में बैठ कर दिल्ली गई थी कि नहीं, जवाहरलाल के अंतम दरशन करने।'

नानी हक्की-बक्की। याददाश्त ने छोटी-सी छलाँग लगाई - हाँ, दिल्ली तो गई थी, किसके मरने पर? मात्मा गांधी मरे था, तब न। कुड़ी ठीक कहँदी होएगी। जवाहर भी मर गया होएगा।

नानी ने अपने हाथों से पतीलों से सबको दाल परोसी। चुन्नी के किनारे में बँधी गाँठ खोली, हाथ से छू कर बच्चों को पैसे बाँटे, 'जाओ पुत्तर, लाले की दुकान से चीजी खा लो। नानी रोज आएगी। अपने छोनो-मोनो को चीजों के पैसे देगी। खब्बरदार जे कोई रोया ते। कल जवाहर आएगा। हाँ, कुलछेतर आता था तो मुट्ठियाँ भर-भर बच्चों को पैसे देता था। तुहानूँ वी देगा।'

'चल नानी, बहुत गलाँ हो गइयाँ। इन लोगों के लिए रात की रोटी भी बनानी है।'

'न भेंणों, रहने दो। यहीं दो ईंटों का चूल्हा बना कर काम चला लेंगे।' अधेड़ उमर की औरत ने सबकी तरफ से हाथ बाँध कर कहा।

नानी को गुस्सा आ गया, 'चुप्प नी, बड़ी आई चूल्हा बनानेवाली। रफूजी हो, पाकस्तानो आए हो। रोटी बणायोगे। न जी। हमारी गड्डी अंबरसर रुकी थी। पंदरा दिन उत्थे रहे। सरगार भरावाँ ने इक दिन चूल्हा नहीं बालने दिया। असी रोटी-रोटी पुचाँवाँगे। देख लेना कल जवाहर आएगा जरूर-पर-जरूर। सब ठीक कर देगा...' काँव-काँव, रोटी दे, रोटी दे। अतीत का दृश्य कट गया। मोये भुखे, जरा भी सबर नहीं। नानी घिसटती हुई बाहर आई। कौवे फुदक कर नीम से नीचे। नानी उन्हें रोटी के टुकड़े डालने लगी।

बाहर के दरवाजे के पास फौजी बूटों की आवाजें। सीपीआरएफवाले आ गए। नानी ने इन दिनों अंग्रेजी का एक और शब्द सीख लिया - सीपीआरएफ दे फौजी।

'नानी, तुम इधर से जाने का नहीं,' नायक दक्षिण भारत का है। नानी से उलटी-सीधी हिंदी बोलने में उसे मजा आता है।

'न पुत्तर, जाणा कहाँ है।'

'बिलकुल ठीक। इस गाँव के हिंदू-सिख में बहोत प्यार है, फिर डरने का क्यों? तुम जाएगा तो हमारी बोत इज्जत खराब होगा।'

'न पुत्तर, पर जीता ते मल्कीयत सवेरे आए थे। कहते है इंदर बुहत बकबक करता है। खतरा है।'

'हाँ नानी, तुम उसको थोड़ा समझा कर रखो। बोत बात करना अच्छा नहीं। अभी बुरे दिन खत्म नहीं हुए। अच्चा, हम जाते।'

'चुप्प ओए हम जाते के पुत्तर, वोह जा लस्सी का घड़ा भरा रखा है, तेरा बाप आ कर पीएगा। हम जाते। बड़ी अंगरेजी मारता है। जा, अंदर से उठा ला। सबको पिला। हाय, इतनी गरमी में बेचारे सारा दिन मारे-मारे फिरते हो। लस्सी पी के जाँणा।'

'नानी, तुम तो हमारे सीओ साब से ज्यादा गुस्सा करता। बहुत हुकुम मारता है,' नायक ने छेड़ा।

'बड़ा देखा तेरी सीओ-फिओ। मेरे सामने ला किसी दिन। वोह फटकार दूँ कि आगे से तुम पर गुस्सा नहीं करेगा। हाँ, बड्डा सीओ-फिओ। बच्चों को डाँटता है हाँ...'

जवानों ने लस्सी पी, सबने पैर ठोक कर नानी को सैल्यूट किया और हँसते हुए घर से बाहर चले गए।

नानी ने सिर उठा कर ऊपर देखा। गर्दनें पेट के साथ लगाए कव्वे ऊँघ रहे हैं। भर गया पेट। मोयों को शांति पड़ गई। अब सो रहे हैं।

वह फिर चारपाई पर लेट गई। धूप सीधी माथे पर आ बैठी, शिस्त लगा कर। नानी उठी। चारपाई को थोड़ा परे खींचा, धूप को गाली दी - 'मोयी, हाथ धो कर पीछे पड़े

रहती है।' उसने चुन्नी की गोल गठरी बनाई, सिर के नीचे रखी, आँखें बंद कर लीं।

हम चाहे सो जाएँ, लेकिन स्मृतियाँ तो हमेशा जागती रहती हैं, इन्हें कभी नींद नहीं आती। नानी के सोए मन-माथे में उसके तीन जवान लड़के उग गए। लगातार लंबे होते हुए। बुरछे जैसे जवान। इतने बड़े हो गए, फिर भी उनके कानों के पीछे नानी काला टीका लगाती थी। बड़ा बहुत गुस्सैल था। एक बार माँ को टोका था, 'टीका-फीका मत लगाया कर, यार लोग मखौल उड़ाते है।' नानी ने गाली दे कर उसे बताया था कि मरजाणे किसी की नजर खा जाएगी। बड़े ने माँ को घूरा और सख्त आवाज में जो कहा, वह वाक्य अब भी नानी के दिल पर खुदा हुआ है -

'कोई माँ का जाया नजर उठा कर देखेगा, तब ही नजर लगेगी न। है कोई बब्बर शेर तो मेरी तरफ देखने का हौसला करे।' उसने अपनी हथेली से कान के पीछे लगा टीका पोंछा और दनदनाता हुआ बाहर निकल गया था।

दूसरा दृश्य अँधेरी कोठरी से बाहर निकला। पहले बलवइयों ने बड़े के टुकड़े-टुकड़े किए थे, फिर दो छोटे भाइयों के। उसे जिंदा छोड दिया था, ताकि ताउम्र कलेजा जलता रहे। लेकिन बड़े की शक्ल क्यों बदल रही है। उसके कटे सिर की जगह अपने दोहते इंदर का सिर क्यों कर लग रहा है। नानी की नींद एक झटके से खुली, बिना कमर पर हाथ रखे चारपाई पर उठ बैठी। हथेलियाँ मुँह पर फेरी। सारे दृश्य वापस अपनी गार में भाग गए। उसने खुद से कहा, 'हे रव्वा, खैर रख दिन को सपने आना तो चंगा नहीं होता। मेरा इंदर क्यों कर सपने में आया। कहीं टक्कर तो नहीं...'

सूरज ठीक सिर पर। इंदर के लौटने का समय हो गया। आज तो घरवाली भी जल्दी लौटेगी। शनीचर को आधी छुट्टी सारी हो जाती है न।

नानी बाहरवाले दरवाजे पर खड़ी हो गई। किसी आते-जाते से वक्त पूछेगी। सबके लिए गरम-गरम फुल्के जो उतारने हैं।

गली वीरान भी और चुप भी। नानी ने गाली दी, 'सब मर गए क्या?'

बैलो के गले की घंटियों की आवाज।

'वे, कौन है?'

'नानी, मैं बख्तावार। जा, अंदर बैठ। अभी सब के आने में देर है।'

'बख्ते, वकीलों की तरह बहस न किया कर। टैम बता, टैम? फुलके उतारने हैं।'

'ओए नानी दी बच्ची, स्कूल दो बजे बंद होता है। अभी बच्चों के आने में देर है, अंदर बैठ। धूप में क्यों सड़ रही है?'

'तू रहा खोता का खोता। आज शनीचरवार है। तेरे बाप स्कूलवाले आधी छुट्टी पूरी छुट्टी करते हैं। क्या टैम हो गया?'

'ओए नानी, टैम नहीं, टाइम कहते हैं।'

'अच्छा-अच्छा अंग्रेज दे बीज, टैम बता।'

बख्तावर दसवीं पास है। जाते-जाते नानी को छेड़ा, 'एलेवन फारटी हो गए, फुल्के उतारना शुरू कर दे।'

'ओए कंजरा, ठीक से टैम बोल। यह फारटी तेरी माँ क्या होते हैं?'

बख्तावार हँसा। 'ग्यारह चालीस' कह कर आगे बढ़ गया।

नानी घिसटती हुई रसोई में आई। उसे दिखाई नहीं देता, लेकिन छू कर सारी चीजें तलाश कर लेती है। सरक-सरक कर स्टोव के पास आटा, तवा, चकला इकट्ठा किया। पहली माचिस की तीली बत्तियोंवाले स्टोव के बाहर गिरी। उसे पता नहीं चला। थोड़ी देर बाद स्टोव के मुँह के पास हथेली की, आँच नहीं लगी। दूसरी तीली जलाई, गाली दी - मोया, कितनी तीलियाँ साड़ता है।

वह जब भी रसोई में काम करे, साथ-साथ आरती शुरू - ओम जय जगदीश...

आँगन में स्कूटर रुका। इंदर दो बच्चों और बीवी को साथ ले आया है। दोनों बच्चे भागते हुए अंदर आए। एक साथ बोले, 'नानी, मुँह खोल, टॉफी खा।'

'फिर आ गए जूते समेत चौके में। निकलो बाहर। मैं नहीं खाँणी टाफी-फाफी।'

बच्चों ने एक-दूसरे की तरफ देखा, पति-पत्नी ने एक-दूसरे की तरफ देखा। आते ही नानी ने बच्चों को डाँट दिया, जरूर कोई बात होगी।

'दम्मो, चटाई यहीं रसोई में बिछा दे। गरम-गरम फुल्के खाओ।'

नानी आज तक सही नाम दमयंती नहीं बोल सकी। पहली बार सुना तो गाली दी थी, 'मोया कितना मुशकल नाम है? मै तो दम्मो बुलाऊँगी।'

सब ने खाना शुरू किया।

'नानी, क्या बात है, कोई आया था क्या?'

'हाँ, जीता और मल्कीयत आए थे, तेरी शिकायत ले कर।'

'क्या शिकायत?' इंदर ने जरा कड़ी आवाज में पूछा।

'और कौन-सी नई बात करेंगे। कहरे थे तूने उगरवादियों के खलाफ बोलना बंद नहीं किया।'

'जो गल्त बात है, उसके खिलाफ तो बोलूँगा ही।'

'क्यों, सिर फट चुका है पहले भी, अक्कल नहीं आई? हिंदुओं के खलाफ बोलता था न! जब दिल्ली में पाकस्तान बना, फाड़ दिया न सिर अगलों ने?'

'शीज राइट।' पत्नी ने समझाया।

'दम्मों, तुझे सौ बार कहा है मेरे सामने गिट-पिट मत मारा करो। अपनी बोली में कह, जो कहना है।'

इंदर ने पत्नी को डाँटा, 'तुम बीच में मत बोलो। पढ़ी-लिखी हो फिर भी इतनी समझ नहीं कि हमारे चुप रहने से जो गलत है, ठीक नहीं हो जाता।'

'इंदर पुत्तर, पढ़-लिख कर तेरी मत मारी गई है क्या। तू सच का नंबरदार तो नहीं। पहले तो सिर फूटा था, अब मारा जाएगा, मारा। सच्चा होने से अक्लमंद होना चंगा है। एक चुप सौ सुख।' वह चुप हो गया। दोनों बच्चों ने ताली बजाई, 'पापा को पनिशमेंट, पापा को पनिशमेंट।' नानी का मुँह उँगलियों से खोला, एक-एक टॉफी जीभ पर रखी। नानी ने लंबी साँस अंदर खींची। टाफी का रस जीभ पर बिछला और वह हँस पड़ी।

'इंदर, रेडियो सुणा। आज तो कोई नहीं मारा गया न?'

'नानी, पाँच मरे।' और वह खाना बीच में ही छोड़ कर उठ गया।

न हालात बदले, न ही इंदर बदला। आदमी-तो-आदमी, अब जानवर भी दिन ढलने से पहले लौट आते हैं, बिना मालिक गाएँ और सड़की-कुत्ते दुकानों के गलियारों में दुबके हुए। इन्होंने भी सब जगह व्याप्त खतरे को सूँघ लिया, पहचान लिया।

पहले नानी के नाम एक पोस्टकार्ड आया। चेतावनी दी गई कि अपने इंदर शर्मा को समझा ले, नहीं तो... गाँववालों ने नानी को समझाया कि किसी शरारती लड़के ने लिख दिया होगा। लेकिन हमेशा गरज कर बोलनेवाला मल्कियत सिंह यह खत पढ़ कर कुछ न बोला, सिर्फ लंबी उसाँस भर कर नानी के आँगन से उठ गया। हाँ, आजकल वह अपनी दोनाली बंदूक हर वक्त पास रखता है। सूरज ढलने के बाद सुरजीत सिंह के साथ प्रत्येक हिंदू परिवार के घर के सामने से गुजरता है, उन्हें हौसला बँधाता हुआ। नानी के घर दोनों रात गए तक बैठते हैं।

रात का पहला पहर ढल चुका होगा। मोटर साइकिल की आवाज नानी के घर की तरफ बढ़ती हुई। सबसे पहले सुनी भी उसने। डर हमारी इंद्रियों को सान पर चढ़ा कर चौकस कर देता है। उसने पूरे जोर से इंदर को आवाज दी, 'इंदर, उठ। अंदर भाग। आ गए। वो लोग।' उसने भी मोटरसाइकिल की आवाज सुनी। नानी की फटे ढोल की आवाज ने उसे झटके से जगा दिया।

'सो जा नानी। यहाँ कौन आएगा। कोई पिक्चर देख कर शहर से लौटा होगा।'

नानी की आँखों में अपने बड़े बेटे के कटे सिर की जगह इंदर के सिर लगने का दृश्य फिर कूद आया। चीख-चीख कर - 'बचाओ, ए लोगो बचाओ' आसमान सिर पर उठा लिया। नीम पर सोए परिंदे जागे, इंदर की बीवी और बच्चे जागे, आँगन में कुहराम मच गया।

मोटरसाइकिल उनके घर के आगे रुकी। नानी और दमयंती इंदर को आँगन से अंदर की ओर घसीटती हुई। बाहर का दरवाजा किसी ने लात मार कर तोड़ दिया। मुँह पर कपड़ा लपेटे एक आदमी अंदर आया। कंधे पर बंदूक रखी।



मोटर साइकिल की आवाज मल्कियत सिंह ने भी सुनी। दौड़ कर अपने मकान की छत पर चढ़ा। नानी का घर साफ दिखाई दिया। इतनी दूर से निशाना तो क्या लगेगा, लेकिन फायर करके डराया तो जा सकता है। पहली गोली उसने नीम के पेड़ की तरफ चलाई। मुँह पर कपड़ा बाँधे आदमी के कंधे पर रखी बंदूक गोली की आवाज से थोड़ा नीचे हो गई। उसने भी फायर किया। गोली इंदर

की जाँघ पर लगी। मोटरसाइकिल पर बैठे आदमी ने कुछ कहा। मल्कियत ने दूसरा फायर किया। वह आदमी आँगन से दौड़ कर बाहर निकला। मोटरसाइकिल के पीछे बैठा। दनदनाती 'बुलेट' गाँव से बाहर जाती सड़क पर मुड़ गई।

गोलियों की आवाज गाँव के सारे लोगों ने भी सुनी। आँगन में सो रहे लोग घरों के अंदर भाग गए। दरवाजे मजबूती से बंद कर लिए। सब से पहले मल्कियत और सुरजीत नानी के घर पहुँचे। पास खड़ी इंदर की पत्नी को सुरजीत ने डाँटा, 'बीवी, अंदर जा और बच्चों को चुप करा। तू कहाँ की डाक्टर है?'

मल्कियत ने इंदर की लुंगी खोली। जाँघ को छुआ, जो खून से लथ-पथ हो चुकी थी। सुरजीत ने टार्च जलाई। मल्कियत ने हाथ से ही जाँघ का खून पोंछा, घाव देखने के लिए। 'नानी, बच गया। गोली पट्ट के मांस पर ही लगी है। बाहर निकल गई। हड्डी बच गई है। चार दिन में चंगा हो जाएगा।

मल्कियत का बड़ा लड़का गाँव की डिस्पेंसरी के हिंदू डाक्टर को साथ ले कर वहाँ पहुँचा। डाक्टर ने चौखट के सहारे बैठी नानी को गुस्से से देखा और जहरीली आवाज में कहा, 'नानी, यह तेरा इंदर गाँव के सारे हिंदुओ को कत्ल करवा कर ही रहेगा।'

जवाब सुरजीत ने दिया, 'भरावा। तू पहले इंदर की पट्टी कर दे, फिर हिंदू-सिक्ख का रोना रो लेना।'

'यह तो पुलिस-केस है। पहले रिपोर्ट दर्ज...'

'क्यों भाई डाक्टर साहब, बंदूक बड़ी कि पुलिस?' मल्कियत सिंह ने अपनी बंदूक कंधे पर रख कर पूछा।

डाक्टर सहम गया। अपनी दवाइयों का बैग खोला।

इंदर को सुबह तक होश आ गया। गाँव से, बड़े-बूढ़े से आपस में सलाह की कि पुलिस में रपट दर्ज कराने से कुछ न होगा, उलटा इंदर की जिंदगी बिलकुल खतरे में पड़ जाएगी। सुरजीत ने भरी आवाज में इंदर और नानी को सलाह दी अब उन्हें यहाँ से चले जाना चाहिए। मल्कियत आँखें नीचे किए धरती को घूरता रहा। वह कह या कर भी क्या सकता है। इंदर पर रास्ते में भी हमला हो सकता है। तब कौन बचाएगा?

'हाँ पुत्तरो, अब हम हिंदुस्तान चले जाएँगे, नानी की आवाज में न दम, न नोक-झोंक, मल्कियत ने समझाया, 'नानी, झल्ली तो नहीं हो गई? कौन-से हिंदुस्तान जाएगी?'

'न, हम हिंदुस्तान चले जाएँगे।'

इंदर को करनाल के एक कॉलेज में नौकरी मिल गई। दीवाली से एक दिन पहले वहीं जाना तय हो गया। नानी ने गाँव की औरतों का बताया, 'हम हिंदुस्तान जा रहे हैं। कुलछेतर कंप लगा है।'

'नानी, इंदर को करनाल नौकरी मिली है, हम कुरुक्षेत्र नहीं जा रहे।' इंदर की पत्नी ने समझाया।

लेकिन नानी तो पिछले महीने-भर से अतीत में जी रही है - विभाजन के दिनों ने गुफा से निकल कर उसके दिमाग के छोटे-से जाग्रत हिस्से पर कब्जा कर लिया है। अतीत हमेशा अपने को दोहराता है इसलिए हमेशा वर्तमान से जुड़ा हुआ।

'देखो दम्मो, मुझे झूठे दिलासे मत दे, हाँ, हम कुलछेतर कंप में जा रहे हैं। मुझे सब पता है।'

ट्रक का प्रबंध सुरजीत ने कर दिया। सुबह मुँह अँधेरे सामान लाद गया। नानी को उठा कर ट्रक में मल्कियत ने लिटाया और हौसला दिया, 'नानी, मैं तुझे वापस लेने आऊँगा। यहाँ के मकान की फिकर न करना। रब्ब सब कुछ जल्दी ही ठीक कर देगा।'

'न पुत्तर मलकीते। हम तो अब कुलछेतर कंप में ही रहेंगे।' नानी ने आँखें बंद कर लीं।

सुरजीत और मल्कियत अपनी जीप में इनके साथ जाएँगे, पंजाब की सीमा तक पहुँचाने।

आगे-आगे ट्रक, पीछे-पीछे जीप। हवा में ठंडका आ गया है। नानी ने मोटा खेस मुँह पर लपेटा और सो गई। छोटे बच्चे और दम्मो की भी आँख लग गई। इंदर आगे ड्राइवर के पास बैठा है।

लगभग तीन घंटे में ट्रक हरियाणा की सीमा में पहुँच गया। धूप में थोड़ी गर्मी। पुलिस चौकीवालों ने चेकिंग के लिए रोका। इंदर ने उन्हें करनाल में नौकरी मिलने की बात बताई। सच पुलिसवालों को भी पता है। उन्होंने चुपचाप, उदास चेहरों से ट्रक अंदर देखा और आगे जाने की आज्ञा दे दी।

मल्कियत ट्रक में चढ़ा। नानी के पैर छुए, ऊँची ओर छेड़ती आवाज में कहा -

'नानी, उठ, तेरा हिंदुस्तान आ गया।' लेकिन नानी ने कोई जवाब नहीं दिया।

सुरजीत ने नानी के मुँह से खेस हटाया। कान के पास जोर से बोला, 'नानी, उठ अपना हिंदुस्तान देख ले।'

लेकिन नानी न हिली, न डुली, बस पथराई आँखें खुली-की खुली। मल्कियत ने हथेली से उसकी मरी हुई आँखें बंद कीं। नानी हिंदुस्तान की सीमा के पार जा चुकी थी।

हिटलर के नाम गांधी के पत्र

(गांधी जी संवाद पूरा करने में विश्वास रखते थे। मन में कोई ग्लानि हो, किसी से शिकायत हो, अपनी बात किसी तक पहुंचाने की ज़रूरत हो या प्रायश्चित ही करना हो, वे जब तक सामने वाले तक अपनी बात न पहुंचा दें, उन्हें चैन नहीं पड़ता था। वे मौखिक संवाद न करके अपनी बात पत्र के जरिये कहना बेहतर समझते थे। महात्मा बनने से बाद तो उनका पत्राचार बहुत अधिक रहा। यहां पर हिटलर को लिखे गये उनके दो पत्र दिये जा रहे हैं। इन पत्रों से पता चलता है कि न केवल वे भारत की आज़ादी के लिए चिंतित थे, विश्व मंच पर शांति के लिए भी वे अपनी बात कहने में कभी पीछे नहीं रहे। अनुवाद और प्रस्तुति – सूरज प्रकाश))

वर्धा, सी पी, भारत
23 जुलाई, 1939

प्रिय मित्र,

मित्र लोग मुझसे आग्रह कर रहे हैं कि मैं इन्सानियत के नाते आपको लिखूं। लेकिन मैं उनका अनुरोध इस भावना के कारण टालता रहा कि मेरी तरफ से आपको कोई भी पत्र गुस्ताखी माना जायेगा। कुछ है जो मुझे बता रहा है कि मैं गुणा भाग न करूं और ज़रूर ही अपील करूं भले ही उसकी कोई भी अहमियत हो।

ये बात तो एकदम स़ाफ है कि पूरी दुनिया में आज आप अकेले ऐसे शख्स हैं जो युद्ध को रोक सकते हैं। ऐसा युद्ध जो इन्सानियत को मटियामेट कर देगा। आपको उस चीज़ की कीमत चुकानी ही पड़ेगी चाहे वह आपको कितनी भी कीमती लगे? क्या आप एक ऐसे आदमी की अपील पर ध्यान देंगे जिसने काफी हद तक सफलता का ख्याल किये बिना युद्ध के तरीके को जानबूझ कर त्याग दिया है? खैर, मैं पहले से ही म़ाफी चाहूंगा अगर मैंने आपको लिखने की गलती की हो।

सदैव ही आपका मित्र

मोहनदास करमचंद गांधी

वर्धा
24 दिसम्बर, 1940

प्रिय मित्र,

मैं आपको मित्र के रूप में सम्बोधित कर रहा हूं, ये कोई औपचारिकता नहीं है। मेरा कोई शत्रु नहीं है। पिछले 33 बरस के दौरान मेरे जीवन का एक ही मकसद रहा है कि जाति, नस्ल या रंगभेद पर ध्यान दिये बिना पूरी मानवता से मैत्री कायम करके अपने मित्रों की संख्या बढ़ाता चलूं।

मैं यह विश्वास कर रहा हूं कि आपके पास यह जानने का समय और इच्छा होगी कि वैश्विक मैत्री के सिद्धांत के प्रभाव में जीने वाली मानवता का एक बहुत बड़ा हिस्सा आपके कामों को किस रूप में लेता है। हमें आपकी बहादुरी या अपनी मातृभूमि के प्रति आपकी श्रद्धा में कोई शक नहीं है और न ही हम यह मान कर चल रहे हैं कि आप कोई दैत्य हैं, जैसा कि आपके विरोधी कहते हैं। लेकिन आपके खुद के और आपके मित्रों और प्रशंसकों के लिखे हुए शब्द और घोशणाएं शक की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ते कि आपके कई कर्म दैत्यों वाले हैं और मानवीय गरिमा के खिलाफ जाते हैं, खासकर मेरे जैसे आदमियों के आकलन में जो विश्व मैत्री में विश्वास रखते हैं। आपने चेकोस्लोवाकिया को अपमानित किया, पोलेंड को तहस-नहस कर दिया और डेनमार्क को तो धूल में ही मिला दिया।मुझे पता है कि आप जिस तरह का ज़िंदगी का नजरिया रखते हैं, इस तरह की घटिया हरकतें आपके लिए बहुत बहादुरी के कारनामे हैं। लेकिन हमें बचपन से ही से सिखाया गया है कि इस तरह के काम मानवता को शर्मसार करने वाले काम होते हैं। इसलिए हम शायद आपकी सफलता की कामना नहीं कर सकते।

लेकिन हमारी स्थिति थोड़ी अलग है। हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मुकाबला कर रहे हैं। वे किसी भी मायने में नाज़ियों से कम नहीं हैं। अगर दोनों में कोई फर्क है तो वह मात्रा का ही है। पूरी मानव जाति का पांचवां हिस्सा ब्रिटिश शासन के दमन चक्र तले ले आया गया है और कोई सुनवाई नहीं है। इसके प्रति हमारा विरोध ब्रिटिश नागरिकों को नुकसान पहुंचाना नहीं है। हम उन्हें बदलना

चाहते हैं न कि लड़ाई के मैदान में उन्हें हराना। ब्रिटिश शासन के ख़िलाफ हमारा यह निहत्थों का संघर्ष है। पता नहीं कि हम उनका हृदय परिवर्तन कर पाते हैं या नहीं, लेकिन ये हमारा दृढ़ निश्चय है कि हम अहिंसा और असहयोग के बल पर उनके शासन को असम्भव बना कर रहेंगे। यह तरीका अपनी प्रकृति में ही ऐसा है कि जिससे बचा नहीं जा सकता। यह इस ज्ञान पर आधारित है कि शोषक व्यक्ति शोषित व्यक्ति की स्वेच्छा से या ज़बरदस्ती, सहयोग की एक निश्चित मात्रा के बिना कुछ हासिल कर ही नहीं सकता। हमारे शासक हमारी ज़मीन हथिया सकते हैं, हमारे शरीरों पर राज कर सकते हैं लेकिन हमारी आत्मा उनके शिकंजे में नहीं फंस सकती। वे हमारा शरीर हर भारतीय- नर नारी और बच्चे को पूरी तरह से नष्ट करके ही पा सकते हैं। यह सही है कि सब लोग वीरता के उस अंश तक नहीं पहुंच सकते और यह भी सच है कि बहुत बड़ी मात्रा में डर की भावना भी विद्रोह को कमज़ोर कर सकती है, लेकिन यह तर्क मूल मुद्दे से अलग ही रहेगा। कारण यह है कि भारत में बड़ी संख्या में ऐसे स्त्री और पुरुष मिल जायेंगे जो अपने शोषक के ख़िलाफ बिना किसी दुर्भावना के अपनी जान देने को तैयार हो जायें बजाये उनके सामने घुटने टेकने के। ऐसे ही लोग हिंसा के तांडव के ख़िलाफ आज़ादी का बिगुल बजायेंगे। मेरी इस बात पर भरोसा करो कि भारत में आपको ऐसे अनगिनत पुरुष और महिलाएं मिल जायेंगी। वे पिछले बीस बरस से इसी तरह का प्रशिक्षण पा रहे हैं। हम पिछले पचास बरस से ब्रिटिश शासन तंत्र को उखाड़ फेंकने की कोशिश कर रहे हैं। आज़ादी का आंदोलन कभी भी इतना मजबूत नहीं हुआ था जितना इस समय है। सबसे अधिक शक्तिशाली राजनैतिक संगठन, मेरा मतलब इंडियन नेशनल कांग्रेस, इस लक्ष्य को पाने के लिए जी जान से जुटा है। अपने अहिंसात्मक प्रयासों के जरिये हमने काफी हद तक सफलता पा ली है। ब्रिटिश शासन तंत्र विश्व के सबसे अधिक संगठित हिंसक तंत्रों में से एक है और हम उससे निपटने के लिए सही तरीके खोजने में लगे हैं। आपने उसे चुनौती दी है। यह देखना बाकी है कि ब्रिटिश ज़्यादा संगठित हिंसक तंत्र है या जर्मन। हम जानते हैं कि ब्रिटिश सोच का मतलब हमारे लिए क्या होता है और दुनिया की गैर यूरोपीय देशों की जातियों के लिए क्या मतलब होता है। लेकिन हम जर्मन की मदद से कभी भी ब्रिटिश शासन से छुटकारा पाना नहीं चाहेंगे। हमने अहिंसा का रास्ता खोज लिया है। यह एक ऐसी ताकत है जो संगठित हो तो दुनिया की सबसे हिंसक ताकतों के मिले-जुले समूह का भी बिना किसी शक के मुकाबला कर सकती है। अहिंसा की तकनीक में, जैसा कि मैंने कहा, हार जैसी कोई चीज़ नहीं है। यह बिना मारे या घायल किये करो या मरो में विश्वास रखती है। मजे की बात यह है कि इसे बिना किसी धन के, और निश्चित ही विनाश के विज्ञान का सहारा लिये बिना, इस्तेमाल किया जा सकता है। आपने तो दोनों का सहारा ले कर देख ही लिया है। मैं यह देख कर हैरान हूं कि आप नहीं देख पा रहे कि अहिंसा किसी की बपौती नहीं है। न सही ब्रिटिश, निश्चित ही कोई और ताकत उभर कर आयेगी जो आपके तरीके का भंडाफोड़ करेगी और आपके हथियार से ही आपका खात्मा करेगी। आप कोई ऐसी विरासत छोड़ कर नहीं जाने वाले जिस पर आपके जाने के बाद आपकी जनता आप पर गर्व करे। क्रूरता के कामों का, चाहे वे कितने भी शानदार तरीके से अंजाम दिये गये हों, कोई भी कौम गुणगान नहीं ही करेगी। इसलिए मैं आपसे इन्सानियत के नाम पर गुज़ारिश करता हूं कि युद्ध को बंद करें। अगर आप अपनी साझी पसंद के किसी अंतर्राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल के पास अपने और ग्रेट ब्रिटेन के सभी विवादित मामले ले जाते हैं तो आप बिल्कुल भी नुकसान में नहीं रहेंगे। अगर आपको युद्ध में जीत मिलती भी है तो इसका यह मतलब नहीं होगा कि आप सही थे। इससे सिर्फ यही सिद्ध होगा कि आपके पास विनाश की ताकत ज़्यादा बड़ी थी। जबकि किसी तटस्थ ट्रिब्यूनल द्वारा दिया गया फैसला यह बतायेगा कि जहां तक मानवीय रूप से सम्भव रहा, कौन-सा पक्ष सही था।

हमारे शासक हमारी ज़मीन हथिया सकते हैं, हमारे शरीरों पर राज कर सकते हैं लेकिन हमारी आत्मा उनके शिकंजे में नहीं फंस सकती। वे हमारा शरीर हर भारतीय- नर नारी और बच्चे को पूरी तरह से नष्ट करके ही पा सकते हैं। ... क्रूरता के कामों का, चाहे वे कितने भी शानदार तरीके से अंजाम दिये गये हों, कोई भी कौम गुणगान नहीं ही करेगी। इसलिए मैं आपसे इन्सानियत के नाम पर गुज़ारिश करता हूं कि युद्ध को बंद करें।

आपको पता ही है कि कुछ ही अरसा पहले मैंने प्रत्येक ब्रिटिश नागरिक से यह अपील की थी कि मेरे अहिंसात्मक विरोध के तरीके को स्वीकार करे। मैंने ऐसा इसलिए किया कि ब्रिटिश मुझे एक दोस्त, बेशक बागी दोस्त, के रूप में मानते हैं। मैं आपके लिए और आपकी जनता के लिए अजनबी हूं। मुझमें इतना साहस नहीं है कि जिस तरह की अपील मैंने हर ब्रिटिश नागरिक से की है, उसी तरह की अपील आपसे कर सकूं। ऐसा नहीं है कि मेरी अपील का वैसा गहरा असर नहीं होगा जैसा कि ब्रिटिश लोगों के मामले में था। लेकिन मेरा यह वाला प्रस्ताव बहुत आसान है क्योंकि यह बहुत व्यावहारिक और जाना पहचाना है।

इस समय के दौरान जबकि यूरोप के लोगों के दिल में शांति की चाह ज़ोर मार रही है, हमने यहां तक किया है कि अपने खुद के शांतिपूर्ण संघर्ष भी स्थगित कर रखे हैं। क्या आपसे यह उम्मीद करना ज़्यादती होगी कि आप ऐसे समय में शांति के लिए प्रयास करें। इसका आपके खुद के लिए व्यक्तिगत रूप से कोई मतलब नहीं हो सकता लेकिन उन लाखों यूरोप वासियों के लिए ये बहुत बड़ी बात होगी, शांति के लिए जिनकी मूक पुकार मैं सुन पा रहा हूं। मेरे कान तो लाखों मूक पुकारें सुनने के आदी हो गये हैं। मैं चाहता था कि आपको और मुसोलिनी महाशय को एक संयुक्त अपील संबोधित करूं। गोलमेज सभा में एक प्रतिनिधि के नाते मैं इंग्लैंड गया था तो रोम में मुझे मुसोलिनी से मिलने का सौभाग्य मिला था। मैं आशा करता हूं कि वे इस पत्र को आवश्यक परिवर्तनों के साथ खुद को भी संबोधित ही मानेंगे।

सदैव ही आपका मित्र

मोहनदास करमचंद गांधी

धर्म: एक व्यक्तिगत मामला

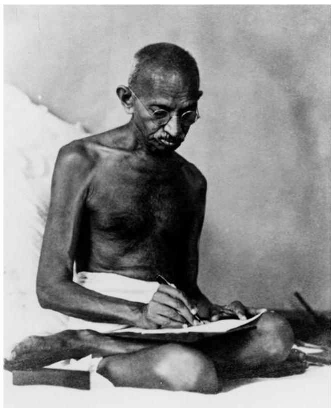
" हिंदुस्तान उन सभी का है, जो यहां पैदा हुए हैं, यहीं पले हैं और जो किसी दूसरे देश को अपना नहीं मानते। इसलिए यह जितना हिंदुओं का है, उतना ही पारसियों का, या यहुदियों का, या भारतीय ईसाइयों का, या मुसलमानों और अन्य अ-हिंदुओं का है। स्वतंत्र भारत में हिंदू-राज नहीं, भारतीय राज होगा जिसका आधार, किसी भी धार्मिक मत या संप्रदाय का बहुसंख्यक होना नहीं, बल्कि धर्म-निरपेक्ष रूप में संपूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व होगा। मेरी कल्पना के अनुसार कई संप्रदाय वाले मिल-जुलकर हिंदुओं को अल्पसंख्यक बना दे सकते हैं। वे अपनी सेवाओं के हिसाब से और अपनी योग्यता के आधार पर चुने जाएंगे। धर्म एक व्यक्तिगत मामला है, जिसका राजनीति में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। विदेशी प्रभुत्व की अप्राकृतिक स्थिति के बदौलत ही तो हमारे यहां धर्म के आधार पर अप्राकृतिक टुकड़े कर डाले गए हैं। विदेशी प्रभुता के न रहने पर हमें इस मूर्खता पर हंसी आएगी कि झूठे आदर्शों और नारों से हम किस तरह चिपटे रहे थे।"

परम व्यापक सहिष्णुता

" मैं तो यह चाहता हूं कि विभिन्न धर्मों को मानने वाले सभी मनुष्य न सिर्फ भारत में, बल्कि सारी दुनिया में- एक-दूसरे के संपर्क से ज्यादा अच्छे मनुष्य बनें और अगर ऐसा हो जाए तो दुनिया आज के मुकाबले कहीं ज्यादा अच्छी रहने की जगह हो जाए। अधिक से अधिक व्यापक सहिष्णुता के लिए मेरी विनती है और इसी दिशा में मैं काम किए जा रहा हूं। मेरा अनुरोध है कि लोग हर धर्म की परीक्षा करें और उन धर्मावलंबियों के ही दृष्टिकोण से करें। अपने स्वप्न के भारत में मैं उसे एक धर्मावलंबी नहीं बनते देखना चाहता, अर्थात्, पूरा हिंदू या पूरा ईसाई या पूरा मुसलमान, बल्कि मैं उसे पूरा सहिष्णु बनते देखना चाहता हूं, जहां उसके सभी धर्म कंधे से कंधा मिलाकर एक साथ चल रहे हों।"

- मोहनदास कर्मचंद गांधी

स्मृति



(उन दिनों की प्रमुख समाचार एजेंसी 'यूनाइटेड प्रेस ऑफ़ इंडिया' के संवाददाता श्री पालेन चैटर्जी ने गांधी जी के साथ नोआखली और अन्य उपद्रवग्रस्त इलाकों का दौरा किया था और गांधी जी को बहुत करीब से जाना था। 30 जनवरी, 1948 को गांधी जी की हत्या हुई उसका विवरण दिया है। श्री पालेन चटर्जी घटना स्थल पर उपस्थित थे।)

'जनवरी 30, 1949। दूसरे दिनों की तरह ही वह भी दिन था, किंतु उस दिन की संध्या भयानक अंधकार ले कर आयी। शायद ही हमारे देश के इतिहास में ऐसी कोई अंधेरी शाम इस से पहले आयी हो। बिड़ला भवन के प्रार्थना-मैदान की हरी घास पर महात्मा गांधी की गोलियों से बिंधी देह पड़ी हुई थी। आभा गांधी और मनु गांधी, जिन के कंधों का सहारा ले कर बापू प्रार्थना के लिए जा रहे थे, रो रही थीं। कुछ ही मिनटों में बापू का जीवनदीप बुझ गया और चारों ओर जैसे अंधकार छा गया।

जिस तख्ते में गांधी जी सोते थे उसी पर उन को धीरे से लिटाया गया। उन के चेहरे को देखने से ऐसा मालूम होता था जैसे वह सो रहे हैं। दोनों आँखें बंद, होठ निस्तब्ध, दोनों हाथ सीने पर ऐसे जैसे कि वह प्रार्थना कर रहे हों, मुख पर शांति की ज्योति, जैसे कि वह जीवित हो।

आभा, मनु और अन्य आश्रमवासी उन के मस्तक के पास बैठ कर रो रहे थे। उन के पैर के पास एक सेवाग्रामवासी बैठा था। एक ओर प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और अन्य नेतागण बैठे थे। बापू के मस्तक के दाहिनी तरफ़ मैं भी बैठा था। सब की आँखों में आंसू थे - सब फफक-फफक कर रो रहे थे। पंडित जी बापू के पैर पकड़ कर रो रहे थे। कुछ देर बाद उन्होंने अपने आंसू पोछे। शायद उन्होंने सोचा कि अगर वह रोये तो लाखों करोड़ों लोगों के आँसू कौन पोंछेगा। सरदार पटेल उन को सांत्वना दे रहे थे। शोक-मग्न सरदार अटल थे। उन की आँखों में आंसू नहीं थे। शायद गांधी जी की वाणी, कि अश्रुपात करने से मृत देह वापस नहीं आती, उन को याद आ गयी। कमरे में एक के बाद एक डॉक्टर आ रहे थे। वे गांधी जी के शरीर की परीक्षा कर रहे थे। किंतु सब ने सिर हिला कर संकेत किया कि सब कुछ समाप्त हो चुका है।

धर्मप्रिय बापू को गीता और रामायण बहुत ही प्रिय थे। अनेक बार उन्होंने कहा था कि अगर वह बीमार हो जायें तो उन को गीता, रामायण आदि से पाठ सुनाया जाये। वही उनके लिए एकमात्र औषधि थी। उन की इस इच्छा के अनुसार बापू के सहयोगियों ने गीता, रामधुन, रामायण पाठ करना शुरू कर दिया। गहरी वेदना में उन सब के कंठ अवरुद्ध हो रहे थे और अश्रु टपक रहे थे।

इस भयानक शोक में मुझे एक पत्रकार का कर्तव्य भी करना पड़ा। मैं उठ कर टेलीफ़ोन के पास गया। हमारे 'युनाइटेड प्रेस के इंचार्ज ने जब मुझ से यह सुना कि गांधी जी को गोली मार दी गयी है तो उन्होंने विश्वास नहीं किया। वह बोले, 'आप क्या कह रहे हैं? मुझे विश्वास नहीं होता कि बापू को कोई इस तरह मार सकता है। मेरी कुछ समझ में नहीं आता। और जोर से और ठीक-ठीक कहिए'। किंतु मैं क्या कहता। मेरा कंठ रूद्ध हो रहा था। जब मैं टेलीफ़ोन करने जा रहा था अनेक भारतीय और विदेशी पत्रकार मुझे पूछने लगे, 'महात्मा जी कैसे हैं?' मैंने उन को कहा 'सब शेष हो चुका। बापू नहीं रहे'।

कमरे में वापस आ कर मैं बापू की देह के पास बैठ कर गीता आदि पाठ सुनने लगा। मेरे सामने वह छोटा टेबिल या जिस के ऊपर बापू के प्रिय ग्रंथ-गीता, कुरान, बाइबिल और आश्रम भजनावली रखे थे। टेबिल के ऊपर बापू की छोटी पेंसिल, कागज, चिट्ठियां आदि पड़ी थी। एक तरफ बापू के तीन बंदर थे, जिन को कि वह अपना गुरू मानते थे।

'एकला चलो रे' : एकाएक कमरे का वातावरण रदन से फिर भर गया। गांधी जी के छोटे पुत्र देवदास गांधी आये और बापू की देह के पास बैठ कर उनके शरीर के चारों ओर हाथ रखा। थोड़ी देर बाद वह धाड़ मार कर रो पड़े और उन की मृत देह को बार-बार चूमने लगे। इस करुण दृश्य को देख कर सब रो पड़े। पंडित नेहरू और

सरदार पटेल ने देवदास को उठाया। फिर आचार्य कृपालानी, श्रीमती सुचेता कृपालानी, श्रीमती नंदिता कृपालानी आदि अनेक लोग उस कमरे में एक के बाद एक आये। श्रीमती सुचेता कृपालानी और नंदिता ने गांधी जी का प्रिय रविंद्र संगीत गाया। 'जीवन जखन् सुखाये जाये, करुणाधारय एशो'। यह गीत गांधी जी के उपवास के समय गाया जाता था। फिर उन्होंने गाया,

'यदि तोर डाक शूने केऊ गा भागे, तो एकला चलो रे।

'एकला चलो' गीत सुन कर मुझे बापू की फठिन नोआखाली यात्रा याद आ गयी। गांधी जी नंगे पैर एक गांव से दूसरे गांव शांति की यात्रा कर रहे थे। बापू के बंगला सेक्रेटरी, अध्यापक निर्मल बसु, मै और कुछ और सरकार उनके साथ इस यात्रा में थे। भयानक शीत में बापू नंगे पैर खेतों में पैदल चलते थे। उनके कोमल पैरों में कांटे चुभते और रक्त गिरता, फिर भी बापू रुकते न ये। मैंने एक दिन यात्रा में बापू से पूछा - बापू जी, आप इस ठंड में कांटों के बीच नंगे पैर क्यों चलते हैं ?" बापू हंस कर बोले - मैं तीर्थ यात्रा में निकला हूँ। मंदिर में सब नंगे पैर जाते है। इसी लिए मैं नंगे पैर जा रहा हूँ

गुरुदेव रवीदनाथ ठाकुर रचित यह 'एकता चलो रे' संगीत गांधी जी को इस अकेली यात्रा में प्रेरणा देता था। प्रतिदिन एक ग्राम से दूसरे ग्राम की मात्रा में हम सब 'एकला चलो रे' गाते थे।

फिर एकाएक कमरे को शांति भंग हो गयो। गांधी जी की पुत्रवधू श्रीमती लक्ष्मी गांधी और पौत्री-पौत्र तारा और मोहन जोर-जोर से विलाप करते हुए कमरे में आये। बापू के शरीर पर ढंकी हुई चादर उन्होंने उठायी। तीनों गोलियों के घावों से रक्त अब भी गिर रहा था। तीन साल का पौत्र गोपू सिसक रहा था। प्रतिदिन संध्या के समय बापू अपने प्यारे गोपू से खेला करते थे।

बेचैन भीड : कमरे के बाहर बहुत भीड़ थी। दरवाजे के पीछे से मैंने बाहर देखा हजारों नर, नारी और बच्चे जनवरी के कठिन शीत में खड़े थे। सब बापू के दर्शन के लिए व्याकुल थे। हजारों कंठों से गांधी जी की जयध्वनि से आकाश गूंज रहा था। हम सब ने बापू की देह को एक टेबिल पर रखा। फिर दरवाजा खोला गया। लोगों से विनती की गयी कि वह एक लाइन में चलें - बापू ने दर्शन के लिए । किंतु लोग पागल जैसे हो गये थे। दौड़ने लगे। भीषण गड़बड़ होने लगी। प्रत्येक व्यक्ति बापू के पैर छूना चाहता था। एक स्त्री रोती हुई जमीन पर बेहोश गिर गयी। इस गड़बड़ में असंभव जानकर, दरवाजा फिर बंद कर दिया गया।

हम सब ने फिर बापू की देह को उठा कर ऊपर के बरामदे में रखा। हजारों लोगों ने उनके दर्शन किये। फिर एक बार आकाश में 'महात्मा गांधी की जय' से गूंज उठा। रात के दस बज चुके थे। बापू के शरीर को फिर उन के कमरे में लाया गया। देवदास भाई ने कमरे की बत्तियाँ बुझा दी। कमरे में अंधेरा हो गया। बापू के सिर के पास एक प्रदीप जलाया गया। एक सिख सज्जन ग्रंथ साहब का पाठ करने लगे।

रात के बारह बजे के करीब पंडित नेहरू कमरे में फिर आये। उनके साथ श्रीमती इंदिरा और थी फिरोज गांधी आये। इंदिरा जी रों रही थीं। पंडित जी का जो कि आन उपवास कर रहे थे, चेहरा फीका पड़ गया था - ओंठ सूख गये थे। उनको देखने से ऐसा प्रतीत होता था जैसे बापू की मृत्यु के इन छह घंटों में ही यह वृद्ध हो गये। रोते-रोते उन की आंखें सूज गयी थी। देवदास जी से उन्होंने बापू के अंतिम संस्कार के बारे में परामर्श किया। वह कमरे में ज्यादा देर तक न रह सके। बाहर जनता की भीड़ फिर बढ़ गयी। उन्मत जनता पंडित जी के सिवाय उनको आज शांति और कौन दे सकता था ? कमरे से बाहर जाने से पहले फिर एक बार उन्होंने बापू के शांत चेहरे की ओर देखा, रूमाल से आंसू पोंछते हुए यह बाहर चले गये जहाँ कि हजारों लोग चिल्ला रहे थे - हम बापू के दर्शन करना चाहते हैं। तब रात का लगभग एक बज चुका था।

दिल्ली की जनवरी महीने की भीषण ठंड की रात। बापू के शरीर को कैसे स्नान कराया जाये। उनके शरीर को स्नानघर में ले जाया गया और उसी तख्ते पर लिटाया गया, जिस पर बैठ कर बापू रोज नहाते थे। हरिराम भाई ने उनकी रक्त-स्नात चादर उठायी। नियम-पालन के लिए उन को स्नान कराया गया। मैं ने गोली के तीन दाग उन के शरीर पर देखे। दो गोलियां उन के शरीर को भेद कर बाहर चली गयी थी। एक गोली शरीर में ही रह गयी थी उस समय की गोली के तीनों दागों से रक्त-स्राव हो रहा था। इस दृश्य को देखकर मेरा सिर चक्कर खाने लगा। कुछ देर के लिए मुझे चारों ओर अंधकार दिखायी देने लगा। शरीर से रक्त धोने के बाद उनको गंगा जल से स्नान कराया गया।

फिर बापू को कमरे के बीच, एक नयी धोती पहना कर, तख्ते पर लिटाया गया। गले में एक रुद्राक्ष की माला पहनायी गयी। मस्तक पर चंदन और कुंकुम का तिलक

लगाया गया। हम सबने मिल कर उन के शरीर को गुलाब के फूलों से, जो कि इंदिराजी और फीरोज भाई लाये थे, सजाया। उनके सिरहाने महिलाओं ने फूल से 'राम-नाम' लिखा। कमरे में चारों ओर अगर-धूप सुलगाया गया।

कर से सिंगार... :

गांधी जी प्रतिदिन साढ़े तीन बजे सवेरे उठ जाते थे और प्रात: प्रार्थना में लीन हो जाते थे। उस दिन ठीक साढ़े तीन बजे प्रातःकाल हम सबने प्रार्थना शुरू की, बौद्ध धर्म, कुरान, गीता, उपनिषद् और जेंदावेस्ता से पाठ हुआ। एक भजन रोज की तरह गाया गया। जब यह करुण भजन गाया जा रहा था। सब रोने लगे। कुछ कमरा छोड़ कर बाहर जा कर चिल्ला कर रोने लगे। भजन के बोल इस प्रकार ये

करले सिंगार भतुर अलबेले;
(तुझे) साजन के पर जाना होगा।
मिट्टी उड़बन, मिट्टी बिछापन,
मिट्टी में ही मिल जाना होगा।
नहा है, धो ले, शीश गुंथा ले,
फिर यहाँ से वापस न आना होगा,

भजन के बाद 'रघुपति राघव राजा राम' धुन गायी गयी। धीरे-धीरे उजाला हो गया। सूर्य की पहली किरण ने कमरे में प्रवेश किया - साथ ही उस भयावह रात्रि का अवसान हुआ। कितनी वेदना में, कितने आंसुओं के साथ वह रात बीती। बापूजी के साथ घूमते हुए इतनी भयानक दीर्घ रात्रि मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखी। रात चली गयी, किंतु फिर भी मुझे दिन के उजाले में भी अंधकार ही नजर आ रहा था।

कमरे के बाहर लाखों-लाखों लोग, स्त्री-पुरुष और बच्चे, आसमान गुंजा रहे थे - 'महात्मा गांधी की जय', 'गांधी जी अमर हैं।' गांधीजी के शेष दर्शन के लिए वे सब आये थे। सारी रात वे भयानक ठंड में खड़े रहे - महज बापू के दर्शन के लिए रोते हुए हजारों लोगों ने बापू के शरीर पर फूल-मालाएं चढायीं। मृत्यु के कई घंटे बीत-चुके थे फिर भी गांधी जी के मुंह पर एक अपूर्व ज्योति थी- शांति और क्षमा का भाव उन के मुख पर अंकित था।

(साभार - दिनमान, फरवरी 1969

सांप्रदायिक समस्या का हल

जब अंग्रेजी शासन नहीं था, जब भारत में एक भी अंग्रेज की सूरत नहीं दिखाई दी थी, तब हिंदू और मुसलमान और सिख क्या आपस में बराबर लड़ते ही रहा करते थे? हिंदू इतिहासकारों ने और मुसलमान इतिहासकारों ने पक्के-से-पक्के प्रमाण देकर हमें बताया है कि तब भी हम आज के मुकाबले ज्यादा मेल-मुहब्बत के साथ रह रहे थे और गांवों में तो आज भी हिंदू और मुसलमान आपस में नहीं झगड़ते। उन दिनों तो उनके बीच लड़ाई-झगड़े की बात कभी सुनी ही नहीं गई थी। परलोकवासी मौलाना मुहम्मद अली अकसर मुझे बताया करते थे-और वह खुद भी थोड़े-बहुत इतिहासकार तो थे ही-कि 'अगर अल्लाह ने मेरी जिंदगी कायम रखी तो हिंदुस्तान पर मुसलमानों के राज का एक इतिहास लिखने का मेरा इरादा है और तब मैं ऐसे कागजात के जरिए, जिन्हें खुद अंग्रेजों ने हिफाज़त के साथ रख छोड़ा है, यह दिखाऊंगा कि औरंगजेब उतना कमीन नहीं था, जितना अंग्रेजों की कूची से वह रंगा गया है कि मुगलों का राज उतना ख़राब नहीं था जैसा हमें अंग्रेजों के लिखे इतिहासों में देखने को मिलता है,' वगैरा वगैरा। और यही बात हिंदू इतिहासकारों ने भी लिखी है। यह झगड़ा पुराना नहीं है। इस झगड़े की शुरूआत अंग्रेजों के आने के साथ हुई और जिस क्षण यह संबंध टूटेगा, जिस क्षण ब्रिटेन और भारत के बीच का यह दुर्भाग्यपूर्ण कृत्रिम, अस्वाभाविक संबंध एक स्वाभाविक संबंध बन जाएगा, ज्यों ही यह संबंध एक स्वैच्छिक सांझेदारी का रूप लेगा-अगर ऐसा रूप उसे लेना हो और इस शर्त पर ही कि दोनों में से किसी भी पक्ष के चाहने पर उसका अंत हो जाएगा और वह रद्द हो जाएगी-जिस क्षण ऐसा होगा उसी क्षण आप देखेंगे कि हिंदू, मुसलमान, सिख, यूरोपियन, एंग्लो इंडियन, ईसाई और अछूत, सभी एक देह एक प्राण की तरह एक साथ रहने लग जाएंगे।

- मोहनदास कर्मचंद गांधी

रामस्वरुप किसान की ग्यारह कविताएं

लड़की भागने के विषय में

(1)
मैं भागी थी पापा
आपकी जेल तोड़ कर
हथकड़ियों सहित
बेड़ियों सहित

नहीं-नहीं
ङाग कैसे सकती थी पापा
हथकड़ियों सहित
बेड़ियों सहित

उड़ी थी
प्रेम के पंख लगा
मुझे पता है
आप गुस्साए थे
रोए थे

यह गुस्साना
और रोना
साथ-साथ कैसे पापा?
ये तो परस्पर विरोधी भाव हैं

सच में पापा
क्या परम्परा के
कीचड़ में धंसा
आपका पांव
आधुनिकता के
फूलों पर टीके
दूसरे पांव के
पास आ गया?..

(2)
मैं भागी थी पापा
पर, आपकी जेल के भीतर ही
और जब
अमरीशपुरी की तरह
कुटील हंसी के साथ
आप सामने आए
मेरे कांन कले से
जमीन खिसक गई

यह सारी जमीन
आप ही की है ना पापा?
यह सारी जमीन
या जेल है?..

(3)
मैं भाग रही थी पापा
जीवन का जिया जाना लेकर
जीवन का
काटा जाना
मेरा पीछा कर रहा था

अचानक
पुलिस सहित
आप सामने आ गए

जिया जाना
हाथों से फिसल गया
काटा जाना
बाहों में आ गया..

(4)
पापा मैं जब भाग रही थी
आपकी अंगुलियों के नाखुन
तेजी से बढ़ रहे थे
आपके दांत
और-और
नुकीले हो रहे थे

आपके नाक की डंडी
धीरे-धीरे गायब हो रही थी

आप क्या से क्या
हो रहे थे पापा
मैं जब भाग रही थी।..

(5)
भागती हुई लड़की
लंगड़ाते-लंगड़ाते
भाग रही है
क्योंकि
संस्कार का कांटा
पगथली के आर-पार
हो गया है

अपने ही
भीतर की भीड़ से
बचते-बचते
भागती हुई लड़की
आखिर किसी से भिड़कर
गिर ही जाती है

और अंत में
अपने ही भीतर के
भेदिए की शिनाख्त पर
पकड़ली जाती है
भागती हुई लड़की
बाहर की पुलिस द्वारा।..

(6)
लड़की भागने का अर्थ

लड़की भागना नहीं
लड़का भागना है

लड़का भागने का अर्थ
लड़का भागना नहीं
लड़का-लड़की का
साथ-साथ भागना है

साथ-साथ भागने का अर्थ
साथ-साथ भागना नहीं
साथ-साथ सोना है

साथ-साथ सोने का अर्थ
साथ-साथ सोना नहीं
जीवन का होना है।..

(7)
पापा, मेरा भागना
मेरे बंधन काटता है
और आपकी नाक

मेरा भागना
मम्मी की नाक
क्यूं नही काटता पापा
उसका कलेजा क्यूं काटता है?

अरे-अरे
माफ करना पापा
मैं पगली
यह भी नहीं जामती कि
मम्मियों की नाक
पापाओं के मुंह पर होती हैं
और पापाओं के कलेजे
मम्मियों के सीने में

नाक और कलेजे
एक जगह
नहीं रहते पापा।..

(8)
'ये रहा
तुम्हारा दूल्हा
साथ-साथ रहोगे तो
प्यार हो जाएगा'
पापा ने कहा
मैनें कहा
नहीं-नहीं
ऐसा नहीं
ऐसा कहो पापा-
'ये रहा तुम्हारा प्यार
साथ साथ रहोगे तो
दूल्हा हो जाएगा'।..

(9)
पार्क की
बीठों भरी
टूटी-फूटी बैंच
यह नहीं जानती कि
उस पर कोई लड़की बैठी है

वह, यह भी नहीं जानती कि
दांतों से दूब का तिनका कुतरती
इस लड़की के भीतर
क्या चल रहा है

उसकी विवशता से अनभिज्ञ
पूरा पार्क
यह भी नहीं जानता कि
उसके लिए
उसे क्या करना चाहिए

पार्क और लड़की के बीच
पसरे अजनबी की
विवशता बड़ी कारुणिक है
जो लड़की भी नहीं जानती
पार्क भी नहीं जानता

लेकिन, लड़की की कृतज्ञता से
जाहिर है कि
पार्क से वह
ऐसा कुछ ले रही है
जो उसके
बहुत काम का है।..

(10)
आओ
रात को फाड़कर कि
कोई सुबह
सी ना पाए

आओ
ऐसा भागें
कि पीछे छुटा मर ना पाए
जी ना पाए

आओ
फिजां के समंदर में
इस रफ़्तार से भागे
कि पानी खौल जाए

आओ
हम सब भाग कर
एक तरफ आ जाएं
इतनी एक तरफ कि
धरती डौल जाए।..

(11)
लड़की का भागना
भागना नहीं
छापामार युद्ध हैं
पितृसत्ता के खिलाफ।..

परलिका, हनुमानगढ़ (राजस्थान),
335504, मो.-9166734004

मनजीत भोला की ग़ज़लें

1.

मुफ़लिसों की बस्तियों में ये नज़ारा आम है
धूप को दिन खा गया है बेचरागां शाम है

तप रहा था गात फिर भी जा चुकी है काम पर
कह रही थी चाँदनी कुछ आज तो आराम है

ये दिया है वो दिया है रोटियां पर हैं कहाँ
घोषणा सरकार की हमको करे बदनाम है

चाय जाकर वो पिए है रोज़ लेबर चौक पर
क्या पता मज़दूर को किस दूध का क्या दाम है

गेट के भीतर नहीं जो जा सके इस्कूल के
आपकी हर योजना उनके लिए बेकाम है

इक कलम औ कुछ किताबें दे नहीं सकते अगर
झोंपडी पे क्यों लिखा अम्बेडकर का नाम है

धार्मिक है ये नगर अब जी यहाँ लगता नहीं
है छुरी पहलू में भोला,मुँह में जिसके राम है

2.

हमारे वास्ते कितना पसीना वो बहाता है
जहाँ पर है नहीं पानी वहाँ कश्ती चलाता है

गरीबों के लिए बैठा कई दिन से जो अनशन पर
सुना है खुद के बच्चों को विदेशों में पढ़ाता है

करे हर फूल को ज़ख्मी मगर लहज़ा मुलायम है
हुनर ये बागबाँ तुझको सिखाने कौन आता है

पुजारी रात के निकले मगर कुछ हैं परीशां से
सनाटे शोर करते हैं कि जुगनू टिमटिमाता है

उसूलों की लड़ाई में कहीं मैं जीत न जाऊँ
यही सब सोचकर मुझको मिरा अफसर डराता है

सुदागर नफरतों के सोच लो ये मुल्क भारत है
महोबत के यहां नगमें कबीरा गुनगुनाता है

ज़रूरी तो नहीं 'भोला' फतह हो ही चरागों की
अहम ये बात है इनसे अँधेरा खौफ़ खाता है

कविता

फिर सुनहरी हो तस्वीर

◆ **वाजिद अली**

बात बात पर आज यहां खिंच रही शमसीर
मेरे हिन्दुस्तान की कैसी है तस्वीर
आये दिन बम फूट रहे, मंगल हो या वीर
अपने सब जन चले गए, सजनी कैसे बांधे धीर
अपनों के बीच भी नारी लज्जा से सकुचा रही ढांपे तन पर चीर
भाई ही लड़ता भाई से मां हो रही अधीर
मां की ममता तड़प रही सूख चला आंखों का नीर
घूर रही आतंक की आंखें तोड़ इंसानियत की जंजीर
मिलकर सोचे आओ सभी कैसे जगाए इनका जमीर
विकसित हो ये देश मेरा फिर सुनहरी हो तस्वीर।

2.

खिदमत मुल्क की ज़िन्दगी संवार देगी
इल्म बांट दे सभी को जिंदगी प्यार देगी
कदम दर कदम सींच जुनूं को
खूबसूरत हो ज़िंदगी मेहनत रंगत निखार देगी
अंधेरे हैं तो उजाले भी होंगे
मुश्किलों से सीख लड़ना ज़िंदगी उपहार देगी
जाना है दूर तुमको बैठो ना छांव में
ये ज़िंदगी है सपने हजार देगी
मेहनत जैसी कीमत मिलती
कुछ न जिंदगी उधार देगी
जोश औ जज़्बा कायम रहे
तो मंजिल की फिक्र क्या
आएगा इक दिन मंजिल पुकार लेगी।

कला अध्यापक, ज. न. वि. कैथल

मैं भी तो शहीद था

◆ दीपक मेवाती 'वाल्मीकि'

बारिसों के बाद जो
बीमारियों की घात हो
जंग का ऐलान तब
मेरी ख़ातिर हो चुका

मानकर आदेश को
मन में सोच देश को
ना ख़याल आज का
ना फ़िकर बाद का

सिर्फ़ एक लक्ष्य है
जो मुझे है भेदना
सीवर हो जहाँ रुका
वो मुझे है खोलना

बाल्टी, खपच्ची,रस्सी
ली उठा हाथ में
दो मेरे संगी भी
चल-चले थे साथ में

सुबह - सुबह की बात है
थोड़ी पर ये रात है
खोला ढक्कन जैसे ही
बदबू आई वैसे ही।

कुछ नहीं था सूझता
कुछ नहीं था बूझता
बदन से कपड़े दूर कर
कमर में रस्सी बांधकर

सुरक्षा की ना बात है
ईश्वर का ही साथ है
आसपास मेरे सब
नाक-भौंह सिकोड़कर

साथ मे खड़े हैं सब
पास में ना कोई अब
मैं अकेला ही भला हूँ
जो भी हो देखेगा रब

दुश्मन से लड़ना है अब
सोच छोड़ उतरना है अब
एक को पकड़ा के रस्सी
देह नरक की ओर बढ़ा दी

गर्दन तक मल में हूँ
आज हूँ बस कल ना हूँ
गैस अब चढ़ रहा है
सिर दर्द बढ़ रहा है।

है अंधेरा ही अंधेरा
रोशनी की बात ना कर
जैसा अब ये हो रहा है
वैसा फिर ना साथ कर

बढ़ रहा हूँ,
चल रहा हूँ
कुछ नहीं सुनाई देता
कुछ नहीं दिखाई देता

मुहँ में मल घुस रहा है
नाक में भी ठुस रहा है।
आँख तक भी आ रहा
साँस नहीं आ रहा है।

चीखना मैं चाहता हूँ
रो नहीं भी पा रहा हूँ
डर रहा हूँ, डर रहा हूँ
मर रहा हूँ, मर गया हूँ।

देह मेरी को खोजते हैं
पर नहीं अभी पा रहा हूँ
मिल रहा हूँ, मिल गया हूँ
मल के साथ, बन मल गया हूँ।

नहीं कोई चर्चा हुई है
नहीं कोई बातें है करता
कैसे मरा, किसके लिए था
नहीं कोई ये पूछता।

सोचता हूँ ?

स्वस्थ जीवन देने को ही
सीवर में मैं था उतरा
देश का सोचा था मैंने
देश का सम्मान था करता।

ना कहीं भी नाम आया
ना कोई मुझे जानता
ना कहीं गिनती है मेरी
ना कोई सम्मान आया

ना कोई मैडल मिलेगा
ना अखबारों में छपूँगा
ना मिलेगा मान मुझको
ना स्वर्णाक्षरों में लिखूँगा।

लड़ा मैं भी था
लड़ाई की थी मैंने भी
लड़ते-लड़ते ही मरा था
मैं भी जीत के करीब था
देश पर जो मर मिटा
मैं भी तो शहीद था ॥

पी.एच.डी. शोध छात्र, गांव व डाकघर - सुन्ध, तहसील - तावड़ू, जिला - नूंह, हरियाणा ,
पिन - 122105, संपर्क - 9718385204

सृजन-सैद्धांतिकी

लोकप्रियता और यथार्थवाद

◆ बर्टोल्ट ब्रेख्त

अनुवादः ऋषि और प्रेम प्रकाश



कोई भी जो समकालीन जर्मन साहित्य में नारों का प्रयोग में लाना चाहता है, उसे अपने दिमाग में यह अवश्य रखना चाहिए कि जिसे भी साहित्य कहा जा सकता है, वह केवल व्यापक अर्थ रखता है और केवल अपने व्यापक अर्थों में ही समझा जा सकता है। इस प्रकार 'लोकप्रिय' पद जिस रूप में साहित्य में प्रयुक्त हो रहा है, उससे यह एक विचित्र संकेतार्थ ग्रहण कर लेता है। इस सूरत में, लेखक से उन लोगों के लिए लिखने की उम्मीद की जाती है जिनके बीच वह नहीं रहता है। फिर भी यदि कोई इस मामले पर अधिक गहराई से विचार करे तो वह पाएगा कि लेखक और जनता के बीच का यह अन्तर इतना विशाल नहीं है, जितना कि इसे कोई सोचता है। आज यह अंतर इतना विशाल नहीं है जितना कि यह प्रतीत होता है और पहले यह उतना न्यून नहीं था जितना कि प्रतीत होता था। प्रचलित सौंदर्यशास्त्र, पुस्तकों का मूल्य और सेंसर व्यवस्था ने लेखक और लोगों के बीच हमेशा ही एक विचारणीय दूरी सुनिश्चित की है। फिर भी इस दूरी के बढने को पूरी तरह से 'बाह्य कारक' के रूप में देखना गलत होगा- अर्थात् अयथार्थपरक होगा। नि:संदेह आज लोकप्रिय शैली में लिखने के योग्य होने के लिए विशेष प्रयास करने होंगे। दूसरी तरफ यह ज्यादा आसान हो गया है- ज्यादा आसान और ज्यादा जरूरी। जनता ऊपरी तबकों से ज्यादा स्पष्टता के साथ दूर हुई है। उसके उत्पीड़क और शोषक खुले तौर पर सामने आ गए हैं तथा उसके खिलाफ व्यापक पैमाने के भयंकर खूनी युद्ध में संलग्न है। पक्ष लेना आसान हो गया है। कहा जा सकता है कि 'जनता' के बीच खुली लड़ाई छिड़ चुकी है।

आज यथार्थवादी शैली में लेखन की मांग को और अधिक लंबे समय तक आसानी से टाला नहीं जा सकता। शासक वर्ग पहले के मुकाबले प्राय: ज्यादा और बड़े झूठ बोल रहा है। सच्चाई बताना, स्पष्टत: पहले से कहीं ज्यादा जरूरी काम हो गया है। पीड़ा और इसके साथ पीड़ितों की संख्या भी पहले से कहीं ज्यादा बढ़ चुकी है। जनता की अपार पीड़ा को दृष्टि में रखते हुए, छोटी-मोटी कठिनाइयों या कुछ छोटे से समूहों की कठिनाइयों की चिंता हास्यास्पद और घिनौनी महसूस की जाने लगी है।

उभरती हुई बर्बरता के खिलाफ हमारी केवल एक मित्र है - जनता, जो कि इससे अत्यधिक पीड़ित है। सिर्फ वही (जनता) है, जिससे कोई भी उम्मीद की जा सकती है। इसलिए यह स्पष्ट है कि जनता की तरफ रुख किया जाना चाहिए और अब यह पहले से ज्यादा जरूरी है कि उसकी (जनता) भाषा में बात की जाए। इस प्रकार लोकप्रिय कला और यथार्थवाद स्वाभाविक मित्र बन जाते हैं। यह जनता-विशाल मेहनतकश लोगों-के हित में है। उन्हें साहित्य से जीवन का सच्चा प्रतिबिम्ब प्राप्त हो और जीवन का सच्चा प्रतिबिम्ब वास्तव में केवल जनता-व्यापक मेहनतकश-की सेवा करता है और इसीलिए निश्चित रूप से यह उसके लिए बोधगम्य और लाभदायक, दूसरे शब्दों में लोकप्रिय होनी चाहिए। फिर भी इन धारणाओं को प्रयोग करने या मिलाने का प्रस्ताव रखने से पहले इन्हें गंभीरता से परिमार्जित किया जाना चाहिए। ऐसा सोचना एक भूल होगी कि ये धारणाएं पूर्णत: पारदर्शी, इतिहास-रहित, अटल या असन्दिग्ध हैं। (हम सभी जानते हैं कि इनका क्या मतलब है - (बाल की खाल न निकाली जाए)। लोकप्रियता की धारणा स्वयं विशेष तौर पर लोकप्रियता नहीं है। यह विश्वास करना यथार्थपरक नहीं है कि यह है। भाववाचक संज्ञाओं- जिनका अंत 'ता' में होता है, की एक पूरी श्रृंखला है, जिसको सावधानीपूर्वक परखा जाना चाहिए। उपयोगिता, सम्प्रभुता और शुचिता के बारे में सोचिए और हम जानते हैं कि राष्ट्रीयता की धारणा काफी विशिष्ट, सांस्कारिक, ग्रवित और संदेहजनक संकेतार्थ रखती है, जिनको हमें नजरअंदाज करने का दुस्साहस नहीं करना चाहिए। सिर्फ

इसलिए कि हमें लोकप्रियता के विचार/धारणा की जरूरत है, हमें इन संकेतार्थों को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए।

ये तथाकथित काव्यरूप ही हैं जिनमें 'जनता' को रूढ़िवादी तरीके से प्रस्तुत किया जाता है, या यों कहें कि इस तरह से प्रस्तुत किया जाता है जो रूढ़िवादिता को प्रोत्साहित करता है। वे जनता को अपरिवर्तनीय गुणों, पवित्र परम्पराओं, कलारूपों, आदतों और रिवाजों, धार्मिकता, वंशुानगत शत्रुओं, अजेय शक्ति इत्यादि का रूप प्रदान करते हैं। उत्पीड़ित और उत्पीड़क, शोषित और शोषक, ठगों और जिनको ठगा गया है, के बीच एक उल्लेखनीय एकता दिखाई देती है, किसी भी सूरत में यह 'तुच्छ' मेहनतकश लोगों और उनके ऊपर बैठे लोगों के बीच के विरोध का प्रश्न नहीं रह जाता है।

लोकप्रिय का अर्थ है - व्यापक जनता के लिए बोधगम्य, उनके अभिव्यक्ति के रूपों को अभिग्रहण करना और उसे समृद्ध करना, उनके पक्ष को समझना, उसे प्रमाणिक करना और उसमें सुधार करना, जनता के सबसे प्रगतिशील हिस्से का प्रतिनिधित्व करना, ताकि वह नेतृत्व ग्रहण कर सके और इसीलिए जनता के दूसरे हिस्से के लिए भी बोधगम्य हो सके, परम्पराओं से संबंधित करना और उन्हें विकसित करना। राष्ट्र के वर्तमान शासक वर्गों की 'उपलब्धियों' को जनता के उस हिस्से तक ले जाना जो नेतृत्व के लिए प्रयासरत हैं।

'जनता' की इस धारणा के साथ जो धोखाधड़ी की गई है, उसका इतिहास लंबा और जटिल है-वह वर्ग-संघर्षों का इतिहास है। हम यहां इस विषय में नहीं जाना चाहते-हम यहां केवल धोखाधड़ी के तत्व को निगाह के सामने रखने के इच्छुक हैं, जब हम यह कहते हैं कि हमें एक लोकप्रिय कला की जरूरत है, तो उससे हमारा मतलब होता है - व्यापक जनता के लिए कला, उन बहुत से लोगों के लिए, जिन्हें चन्द लोगों द्वारा दबाया गया है- स्वयं जनता - उत्पादक जनता, जो अब तक राजनीति के लिए एक वस्तु थी, जिसे अब राजनीति का कर्ता बन जाना चाहिए। हमें याद रखना चाहिए कि लोगों को शक्तिशाली संस्थाओं द्वारा, परिपाटियों द्वारा कृत्रिम तरीके से व बलपूर्वक प्रतिबंधित करके पूर्ण रूप से विकसित होने से रोका गया है और यह कि लोकप्रिय की धारणा पर अनैतिहासिक, स्थिर व अविकासशीलता का ठप्पा लगा दिया गया है। हम लोकप्रियता के ऐसे विचार से सरोकार नहीं रखते-उल्टे हमें इससे लड़ना होगा।

लोकप्रिय की हमारी धारणा उन लोगों से संबंधित है, जो न केवल ऐतिहासिक विकास में पूरी भागीदारी करते हैं, बल्कि सक्रियता पूर्वक उस पर अधिकार कर लेते हैं, उसकी गति को बल देते हैं और उसकी दिशा निर्धारित करते हैं। हमारे दिमाग में वह जनता है, जो इतिहास बनाती है, दुनिया को बदलती है और खुद को भी। हमारे मस्तिष्क में संघर्षरत लोग हैं और इसीलिए लोकप्रिय की एक जुझारू धारणा है।

लोकप्रिय का अर्थ है - व्यापक जनता के लिए बोधगम्य, उनके अभिव्यक्ति के रूपों को अभिग्रहण करना और उसे समृद्ध करना, उनके पक्ष को समझना, उसे प्रमाणिक करना और उसमें सुधार करना, जनता के सबसे प्रगतिशील हिस्से का प्रतिनिधित्व करना, ताकि वह नेतृत्व ग्रहण कर सके और इसीलिए जनता के दूसरे हिस्से के लिए भी बोधगम्य हो सके, परम्पराओं से संबंधित करना और उन्हें विकसित करना। राष्ट्र के वर्तमान शासक वर्गों की 'उपलब्धियों' को जनता के उस हिस्से तक ले जाना जो नेतृत्व के लिए प्रयासरत हैं।

अब हम यथार्थवाद की धारणा को लेते हैं। इस संकल्पना 'कॉन्सेप्ट' को भी प्रयोग से पहले परिमार्जित किए जाने की जरूरत है, क्योंकि यह एक पुरानी संकल्पना है और बहुतों द्वारा इसे बहुत से उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया गया है। यह जरूरी है, क्योंकि लोग अपनी सांस्कृतिक विरासत को केवल स्वामित्वहरण द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। साहित्यिक रचनाओं का अभिग्रहण फैक्ट्रियों की तरह नहीं किया जा सकता। अभिव्यक्ति के साहित्यिक रूप 'पेटेण्ट' की तरह अभिग्रहित नहीं किए जा सकते। यहां तक कि लेखन के यथार्थवादी तरीके-जिसके साहित्य ने बहुतेरे भिन्न उदाहरण प्रस्तुत किए हैं- में भी उसे कब, किस तरह और किस वर्ग द्वारा इस्तेमाल किया गया है, इसके सूक्ष्मतम ब्योरों के निशान देखे जा सकते हैं। जबकि जनता हमारी अआंखों के सामने संघर्षरत है और यथार्थ को बदल रही है, तब हमें कथा (कथावस्तु या कथा-रूपों) के 'आजमाये' नियमों, पूज्य साहित्यिक नमूनों, शाश्वत सौंदर्यशास्त्रीय नियमों के साथ चिपकना

नहीं चाहिए। हमें यथार्थवाद को मौजूदा विशिष्ट रचनाओं से यथावत व्युत्पन्न नहीं करना चाहिए बल्कि हमें प्रत्येक साधन का प्रयोग करना होगा-पुराना और नया, आजमाया और बिना आजमाया, कला से व्युत्पन्न और अन्य स्रोतों से व्युत्पन्न-ताकि यथार्थ को लोगों के लिए इस रूप में प्रस्तुत किया जा सके, जिसमें (जिस कला रूप में) वे महारत हासिल कर सकें। हमें ध्यान रखना होगा कि किसी विशेष कालखण्ड के उपन्यास के किसी एक विशिष्ट ऐतिहासिक रूप को यथार्थवादी उपन्यास के रूप में वर्णित न किया जाए-जैसे कि बाल्जाक या तोल्स्तोय के उपन्यास-जिससे कि यथार्थवाद के औपचारिक शाब्दिक मानदण्ड न खड़े हों। हमें इस तरह से नहीं कहना चाहिए कि यथार्थवादी लेखन केवल तब होगा, जब हम प्रत्येक चीज को सूंघ सकें, चख सकें और महसूस कर सकें, जब 'वातावरण' हो और कथानकों को इस तरह से बनाया जाए कि वे पात्र के मनोविश्लेषण की तरफ ले जाएं। हमारे यथार्थवाद की संकल्पना व्यापक और राजनीतिक-सभी रीति-नीतियों से सार्वभौम-होनी चाहिए।

यथार्थवाद का अर्थ है समाज के भीतर कार्य-कारण संबंधों के समूहों का अनावरण करना /चीजों के बारे में प्रचलित दृष्टिकोण जो कि सत्ताधारी वर्ग का दृष्टिकोण है - को बेनकाब करना/उस वर्ग के दृष्टिकोण से लिखना जोकि उन गंभीर समस्याओं का जिससे मानव समाज ग्रसित है का वृहत्तम समाधान प्रस्तुत करता है/या विकास के तत्वों पर बल देना/मूर्त को संभ्भव बनाना और इससे अमूर्तन को संभव बनाना।

यथार्थवाद का अर्थ है समाज के भीतर कार्य-कारण संबंधों के समूहों का अनावरण करना/चीजों के बारे में प्रचलित दृष्टिकोण जो कि सत्ताधारी वर्ग का दृष्टिकोण है - को बेनकाब करना/उस वर्ग के दृष्टिकोण से लिखना जोकि उन गंभीर समस्याओं का जिससे मानव समाज ग्रसित है का वृहत्तम समाधान प्रस्तुत करता है/या विकास के तत्वों पर बल देना/मूर्त को संभ्भव बनाना और इससे अमूर्तन को संभव बनाना।

ये व्यापक नियम हैं और इन्हें विस्तारित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन नियमों का पालन करते हुए हमें कलाकार को उसकी ललित कल्पना, उसकी मौलिकता, उसके हास्य एवं उसकी खोजों को प्रयोग करने की इजाजत देनी चाहिए। हमें अत्यधिक ब्यौरेवार साहित्यिक नमूनों से नहीं चिपकना चाहिए। हमें कलाकार को अति अनमनीय तरीके से पारिभाषित कथा-रूपों से बौधना नहीं चाहिए।

हमें यह स्थापित करना होगा कि लेखन के तथाकथित भावात्मक (एन्द्रिक) तरीके - जहां कोई सूंघ सके, चख सके और प्रत्येक चीज को महसूस कर सके - को लेखन के यथार्थवादी रूप के साथ स्वत: जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए। हमें यह स्वीकार करना होगा कि ऐसी रचनाएं हैं जोकि भावनात्मक (एन्द्रिक) रूप में लिखी गई हैं परन्तु यथार्थवादी नहीं हैं और ऐसी यथार्थवादी रचनाएं हैं जोकि भावात्मक (एन्द्रिक) शैली में नहीं लिखी गई हैं। हमें ध्यानपूर्वक इस प्रश्न को जांचना होगा कि क्या हम तभी वास्तव में एक उत्तम कथानक विकसित करते हैं जब हमारा सर्वोच्च उद्देश्य पात्रों के आत्मिक जीवन को प्रकट करना हो। हमारे पाठक अगर विभिन्न साहित्यिक युक्तियों से गुमराह किए जाने के कारण केवल नायकों के आत्मिक उद्धार ही महसूस करते हैं तो उन्हें शायद पता चले कि घटनाओं के अर्थों को समझने की कुंजी उन्हें नहीं दी गई है। व्यापक रूप से परीक्षण किए बिना बाल्जाक और तोल्स्तोय के रचनात्मक रूप को अपना लेने से हमें अपने पाठक-जनता को उतना ही उबा देंगे, जितना कि ये लेखक भी प्राय: करते हैं। यथार्थवाद रूप मात्र का प्रश्न नहीं है। यदि हम उन यथार्थवादियों की शैली की नकल करेंगे, तो हम यथार्थवादी नहीं होंगे।

समय प्रवाहमान है और अगर ऐसा नहीं होता तो उनके लिए बहुत बुरा होता जो मुंह में चांदी का चम्मच लेकर पैदा नहीं हुए हैं। तरीके चूक जाते हैं, उद्दीपन काम नहीं करते। नई समस्याएं पैदा होती हैं और नई विधियों की मांग करती हैं। यथार्थ बदलता है, इसको पेश करने के लिए प्रस्तुति का तरीका भी बदलना चाहिए। शून्य से कुछ पैदा नहीं होता, नया पुराने से पैदा होता है और केवल इसी कारण यह नया है। दमनकर्ता प्रत्येक युग में समान तरीके से काम नहीं करते। उन्हें हमेशा एक ही तरीके से परिभाषित नहीं किया जा सकता। उन्हें हमेशा एक ही तरीके से परिभाषित नहीं किया जा सकता। उनके पास पकड़े जाने से बचने के लिए बहुत से साधन हैं। वे अपने सैन्य मार्गों को यातायात मार्ग कहते हैं, उनके टैंक इस प्रकार से रंगे हैं कि वे मैकडफ के जंगल (विलियम

शेक्सपीयर के नाटक मैकबेथ की सेना पेड़ों की शाखाओं के पीछे छिपकर मैकबेथ को घेरती हैं) जैसे दिखते हैं। उनके एजेण्ट फफोले भरे अपने हाथ दिखाते हैं मानों कि वे मजदूर थे। नहीं, शिकारी को शिकार में बदलना आविष्कार की मांग करता है। जो कल लोकप्रिय था, आज नहीं है, क्योंकि लोग आज वे नहीं है जोकि वे कल थे।

कोई भी जो रूपवादी पूर्वाग्रह का शिकार नहीं है जानता है कि सत्य को कई तरीकों से दबाया जा सकता है और वह कई तरीकों से अभिव्यक्त होना चाहिए।

मैं यह अनुभव से कह रहा हूं कि सर्वहारा के लिए साहसपूर्ण और असाधारण चीजों को रचने के लिए डरने की जरूरत नहीं है, जब कि ये उसकी वास्तविक परिस्थितियों से संबंधित होती हैं। सुसंस्कृत लोग व कला के कद्रदान हमेशा ही होंगे, जो टोकेंगे-'साधारण जनता इसे नहीं समझती', लेकिन साधारण जनता व्याकुलता से उन्हें किनारे धकेल देगी और कलाकारों के साथ सीधे तारतम्य स्थापित कर लेगी। कुछ आडम्बरपूर्ण ऊंची बकवासें हैं जोकि कुलीन गिरोहबाजों के लिए हैं और जो नए कुलीन गिरोह बनाने में प्रवृत हैं-पुराने नमदे के टोप को दो हजारवीं बार फिर से बनाना, पुराने सड़े हुए मांस पर मसाला लगाना - इन्हें सर्वहारा संदेह लेकिन फिर भी सहिष्णु तरीके से सिर झटकते हुए खारिज करता है (वे कितनी बुरी हालत में होंगे)। यह कोई मसाला नहीं था जिसे खारिज किया गया था, बल्कि सड़ता हुआ मांस था। दो हजार बार बनाया जाना नहीं, बल्कि एक पुराना नमदा था। जब वे स्वयं रंगमंच के लिए लिखते थे और उसका मंचन करते थे, तो वे आश्चर्यजनक रूप से मौलिक थे। तथाकथित उद्वेलानात्मक-प्रचारात्मक कला, जिस पर लोग-हमेशा अच्छे लोग नहीं-अपनी नाक भौं सिकोड़ते थे, नई कलात्मक विधियों और अभिव्यक्ति के रूपों की खान थी। यहां से असली लोकप्रिय कला के युगों से लंबे समय से विस्मृत भव्य तत्व पैदा हुए, जिनमें नए सामाजिक उद्देश्यों के लिए बड़े परिवर्तन किए गए थे, लुभावना आरोह और अवरोह, खूबसूरत सरलीकरण, जिसमें प्राय: विस्मयकारी लालित्य (सुरुचि या सुघड़पन) और शक्ति तथा जटिलताओं के लिए निडर दृष्टि थी। इसमें से बहुत कुछ आदिम हो सकता है, लेकिन उन अर्थों में नहीं, जिन अर्थों में बुर्जुआ कला का आध्यात्मिक परिदृश्य, जोकि सिर्फ आभासी तौर पर सूक्ष्म, आदिम होता है। प्रस्तुति की एक शैली को इसलिए खारिज करना कि उसकी कुछ रचनाएं असफल रही, एक गलती होगी। ऐसी शैली को जो आधारभूत तत्यों के लिए गहराई तक जाने और अमूर्तन को संभव बनाने के लिए-अक्सर सफलतापूर्वक-प्रयासरत है।

इसीलिए लोकप्रिय कला और यथार्थवाद की कसौटी को उदारतापूर्वक और सावधानी से चुना जाना चाहिए, इसके केवल मौजूदा यथार्थवादी तथा लोकप्रिय रचनाओं से ग्रहण नहीं करना चाहिए, जैसा कि प्राय: होता है, इस तरह से करते हुए कोई रूपवादी मानदण्ड पर पहुंच जाएगा और वहह केवल रूप में ही लोकप्रिय कला और यथार्थवाद होगा।

कोई रचना यथार्थपरक है या नहीं यह केवल इस बात से निर्धारित नहीं हो सकता कि यह उन मौजूदा रचनाओं की तरह है या नहीं जिन्हें यथार्थपरक कहा जाता है या यह उनकी तरह है या नहीं जो अपने समय में यथार्थवादी थीं। कलाकृति की किसी अन्य कलात्मक चित्रण से तुलना करने की बजाए प्रत्येक मामले में कलाकृति में जीवन के चित्रण की स्वयं उस जीवन के साथ, जिसका चित्रण किया गया है, से तुलना करनी चाहिए। जहां तक लोकप्रियता का संबंध है, इसकी एक अत्यधिक रूपवादी प्रक्रिया भी है, जिससे सावधान रहना चाहिए। साहित्यिक कृति की बोधगम्यता केवल इस बात से सुनिश्चित नहीं की जा सकती है कि यह ठीक उसी तरह से लिखी गई है जैसे कि वे रचनाएं जिन्हें उनके समय में बोधगम्य समझा जाता था। वे दूसरी कृतियां भी जो अपने समय में बोधगम्य थीं, हमेशा अपने से पहले की कृतियों की तरह नहीं लिखी गईं। उन्हें बोधगम्य बनाने के लिए कदम उठाए गए थे। उसी तरह हमें आज नई रचनाओं की बोधगम्यता के लिए कुछ अवश्य करना चाहिए। लोकप्रिय होना ही सिर्फ एक चीज नहीं है, लोकप्रिय बनना भी एक प्रक्रिया है।

अगर हम एक जिन्दा और जुझारू साहित्य की आशा रखते हैं जोकि यथार्थ से पूर्णत: संलग्न हो और जिसमें यथार्थ की पकड़ हो-एक सच्चा लोकप्रिय साहित्य-तो हमें यथार्थ की द्रुत गति के साथ हमकदम होना चाहिए। महान मेहनतकश जनता पहले से ही इस राह पर है। उसके दुश्मनों की कारगुजारियां और क्रूरता इसका सबूत हैं।

साभार : आह्वान मई-जून 2016

अदम गोंडवी : होशो-हवास में लिखी गई कविता का सच



◆ रामलखन कुमार

इतिहास में दर्ज़ सत्ताओं की प्रकृति हमें बताती हैं कि प्रत्येक सत्ता का प्रारंभ मानव कल्याण जैसे वादों से होता है, पर कुछ दिनों के बाद वे अपना रुख बदल लेते हैं। लोक हित में कही गयी बातों को ताक पर रखकर सत्ता में बैठे लोग मनमौजी हो जाते हैं। यूरोप के कई शासकों के इतिहास को पढ़ने के बाद यह धारणा और भी मज़बूत हो जाती है। जनता द्वारा दिए गए जनमत का बेजा इस्तेमाल करते हुए शासक तानाशाह में तब्दील होते रहे हैं।

हर समय में एक बौद्धिक वर्ग भी रहा है जिनके बोलने-लिखने और हक की बात करने को देश के लिए खतरा बताया जाता रहा है तथा उन्हें विकास के मार्ग में अवरोधक माना जाता रहा है। यह चलन आज का नहीं है, पर आज यह किसी सत्ता के लिए बाधक न होकर देशद्रोही हो गए हैं। लिंचिंग पर प्रश्न करना, बलात्कारियों के खिलाफ बोलना, महँगाई, बेरोजगारी, अशिक्षा इत्यादि विषयों पर सरकार से सवाल करने भर से अब बौद्धिक वर्ग देशद्रोही कहे जाने लगे हैं।

आज हम जिस दौर में जी रहे हैं ऐसे प्रतिकूल माहौल में अदम गोंडवी की याद स्वाभाविक है। अगर वे जिंदा होते तो उन्हें अपने पूरे वाक्य के लिए नहीं बल्कि हर शब्द के लिए देशद्रोही करार दिए जाते और अदालतों में चक्कर काट रहे होते। अदम का यह कहना कि 'जो डलहौजी न कर पाया वो ये हुक्काम कर देंगे, कमीशन दो तो हिंदुस्तान को नीलाम कर देंगे'। ऐसा कहते हुए वे जज़्बाती नहीं हैं बल्कि सत्ता की नीयत को देखकर ही ऐसा कहते हैं। हर बात होसोहवास में कहने वाले कवि आज हमारे बीच नहीं है पर आज उनकी रचनाओं को बार-बार पढ़ने की जरूरत है।

अदम उस दौर के कवि हैं जब देश आज़ाद है। आज़ादी किसे रास नहीं आती, बिल्कुल आती है। पर अदम को रास नहीं आती। आज़ादी के लिए किए संघर्षों को अदम ने सुना था। वे आज़ाद भारत के पैसठवें दिन पैदा हुए थे। उनके काव्य में जहां एक ओर आज़ादी के लिए किए गए संघर्ष और ज़ालिम अंग्रेजों की क्रूरता दिखाई पड़ती है, वहीं आज़ाद भारत में सत्ता पक्षों के नंगा नाच भी। अदम सैकड़ों कवि और ग़ज़लकारों के भीड़ में अलग से पहचाने जाने वाले ग़ज़लकार है। ग़ज़ल के सौन्दर्यबोध और उनकी परंपरागत ढर्रे को तोड़कर उन्होंने ग़ज़ल में बहने वाली आँसू को समस्याओं में बहने वाली आँसू की ओर मोड दिया है। अदम उन ग़ज़लकारों में से थे जो ग़ज़ल को एक मकसद की तरह लेते थे। उछल-कूद से अलग हटकर वे गंभीर से गंभीर समस्याओं को सलीके से कह देने की जुर्रत और हौसला रखते थे।

'जितने भी हरामखोर थे कुर्बे जबार में
प्रधान बनकर आ गए अगली कतार में'

कहने वाले अदम गोंडवी की याद विपरीत परिस्थितियों में भी बोलने और लिखने का साहस देता है। मैनेजर पांडे अदम गोंडवी के बारे में लिखते हैं कि 'अदम गोंडवी की कविता आज की हिन्दी कविता की दुनिया में एक अचरज की तरह है। आज की हिन्दी कविता के रूप, रंग, दिशा, दृष्टि, बनावट-सजावट और पहुँच की इच्छा से एकदम अलग और बेपरवाह। वह उनकी कविता है जिनके लिए आज कोई कविता नहीं लिखता। वह गाँव के गरीबों, दलितों, असहायों, मजदूरों, किसानों और सताई जाने वाली औरतों की कविता है। ऐसी ही कविता को कार्ल मार्क्स ने मनुष्यता की मातृभाषा कहा है (कल के लिए पृ.6)

जो डलहौज़ी न कर पाया वो ये हुक्काम कर देंगे

यह महज़ अनुमान लगाया जा सकता है कि एक कवि का विश्वास इस लोकतंत्र से किस कदर समाप्त हो गया है। वह समता, समानता का दंभ भरने वाले नेताओं को पूँजीपतियों को गोद में बैठा देखकर चिंतित है। डलहौज़ी जो नहीं कर पाया वह सत्ता में बैठे लोग कर सकते हैं, ऐसा भय कवि को क्यों हो रहा है? उसे इस बात की चिंता क्यों सताए जा रही है कि अगर ठीक-ठाक कमीशन मिल जाए तो हिंदुस्तान को भी नीलाम कर देंगे? कवि के अंदर का डर चाहे उनके समय का ही क्यों न हो

पर इस भय से आज भी मुक्ति पाना कठिन है। देश को लूटकर दूसरे देश में बस जाना कितना आसान है यह हाल के दिनों में खुशी-खुशी विस्थापित हुए पूँजीपतियों को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है। व्यवस्था को बदलने के लिए अदम ने जो लड़ाई लड़ने की ठानी वह किसी एक व्यक्ति की लड़ाई नहीं है। उन्होंने लड़ने का अहिंसक तरीका ढूंढा। भले ही वे अंत में जनता को विद्रोही और खुद को बम बनाने की धमकी देने लगते हैं 'बम उगाएँगे अदम गंदुम के एवज़, आप पहुंचा दे हुकूमत तक हमारा ये पैगाम' (समय से मुठभेड़ पृ 73) ठेठ किसान का यह आक्रोश सड़ी-गली व्यवस्था से हारकर ही बम तक की बात करने लगता है। कलम के बल पर वे उन लोगों की आवाज़ बनने की कोशिश करते हैं जिनकी ज़ुबान न कभी खुली और न ही खोलने की जुर्रत पैदा की गई।

भूख जब बेकाबू होती है तो बगावत पैदा होती है

अदम गोंडवी की ग़ज़लों में जिस भूख का चित्रण है कवि उस भूख के लिए आज़ाद भारत के नेताओं को जिम्मेदार मानते हैं। भूख का ऐसा चित्रण बहुत कम कवियों की कविताओं में मिलती है। शहरी नेताओं को आमंत्रित करते हुए अदम अपने गाँव की हालत दिखाना चाहते हैं। वही गाँव जो सदियों का संताप आज तक झेलते आ रहा है। नेताओं के लिए गाँव की समस्याएँ महज़ छोटी सी समस्या है जिसे इस पंचवर्षीय योजना में सुलझा दिए जाएंगे। अदम इस संदर्भ में कहते हैं

'आप आए तो कभी गाँव के चौपाल में,
मैं रहूँ या न रहूँ भूख मेज़बाँ होगी'

(धरती की सतह पर पृ.86)

कवि के भीतर यह अविश्वास किसने पैदा किया? विकास की लूट आज़ादी से लेकर आजतक जारी है। यह कहना बेईमानी होगी कि जिस भूख को तुलसी, त्रिलोचन, और बाबा नागार्जुन समेत कई कवियों ने भोगा और देखा है वह अब नहीं है। न्यू इंडिया में भी भूख का प्रदर्शन लाज़बाब है। देश की राजधानी से लेकर झारखंड समेत कई सूबे में इसका प्रकोप मलेरिया और हैज़ा की तरह आज भी दिखाई पड़ता है। अदम भूख और दारिद्रय को काव्य विषय बनाते हुए कहते हैं

'भूख के अहसास को शेरो-सुख़न तक ले चलो /
या अदब को मुफ़लिसों की अंजुमन तक ले चलो'

(धरती की सतह पर पृ.43)

हुकुमत द्वारा प्रदत्त यह भूख विचलित करने वाली है। कवि ने जिस भूख का उल्लेख किया है, वह उनकी निजी भूख भी है। जिसे वह अंतिम समय तक झेलते भी हैं। डॉ. जयराम 'कल के लिए' पत्रिका के संपादकीय में लिखते हैं 'मुझसे वे डरते भी बहुत थे। जब शराब की बात चलती तो वे कहते 'नहीं मान्यवर, खाने का जुगाड़ नहीं पिएंगे कहाँ से'(कल के लिए, पृ. 4)।

अदम गोंडवी उस बेखौफ़ भारत की कल्पना करते हैं जिसमे न किसानों की हकमारी हो न ही मजदूरों को पसीना बहाने के बाद देहाडी के लिए गिड़गिड़ाना पड़े। ऐसी व्यवस्था हो जहां कृष्णा सुरक्षित रह सकें और ठाकुरों की हिम्मत न हो उनकी ओर आँख उठाकर देखने की। पुलिस पूँजीपतियों का दलाल न हो, पंचायत में बैठने वाले सरपंच ईमानखोर न हो, वे सच को सच कहने वाली जुबान रखते हों। बहू बेटियों की लाज उतारने की हिम्मत करने वालों को कठोर सजा मिले। आम जन को यह स्वप्न देखना ठीक है पर इसे अमली जामा पहनाना किसी भी हुकूमत के लिए आसान नहीं है। भूख धर्म को ठेंगा दिखाती है, धर्म कौम को बहलाता है। गर्म रोटी की महक सचमुच भूखे लोगों के लिए पारलौकिक सुख से ज्यादा आनंददायक होता है। कवि मानते हैं कि

'गर्म रोटी की महक पागल बना देती हमें
पारलौकिक प्यार का मधुमास लेकर क्या करें'।

(धरती की सतह पर पृ.44)

छेड़िए एक जंग मिलजुलकर गरीबी के खिलाफ़
दोस्त मेरे मज़हबी नगमात को मत छेड़िए

(समय से मुठभेड़, पृ. 88)

अदम इन समस्याओं को देखते-देखते अंत में बागी होते जान पड़ते है। आज के दौर में उनकी कविताएं लोगों को उकसाने, जगाने और जुर्म के खिलाफ़ जन आंदोलन के लिए तैयार करने जैसी है। सदियों का संताप, बस बहुत हो गया, अब और नहीं' का उद्घोष जगह-जगह दिखाई पड़ता है

'जब भुखमरी की धूप में जलते किसान हों
मुंह में जबान रखते हुए बेजबान हों
नफ़रत की रुत में दंगों के सोले जवान हो
जम्हूरियत के तन पे ज़िना का निशान हों
जनता को हक है हथियार उठा ले'

(समय से मुठभेड़ पृ. 96)

आज ब्राह्मणवाद से आज़ादी, मनुवाद से आज़ादी का नारा लगाते हुए भी लोग देशद्रोही माने जा रहे हैं। ऐसे में हथियार उठा लेने की वकालत करने वाले कवि को क्या कहा जा सकता है? यह अनुमान लगाइये? पूँजीवादी व्यवस्था में पल-बढ़ रहे पूँजीपतियों की जमात के लिए कविता आनंद का विषय होती है। ऐसे दौर में अदम गोंडवी सचमुच मुंह में जुबान रखने वाले कवि है। बेज़ुबान कवि कभी नहीं कह पाते कि,

'जब सियासत हो गयी है पूँजीपतियों की रखैल
आम जनता को बगावत का खुला अधिकार है'।

(धरती की सतह पर पृ. 99)

कबीर सा फ़न, पाश और दुष्यंत जैसी बेबाकी सचमुच उन्हें बेखौफ़ कवि बनाती है। कवि अपने आस-पास यह देखते हैं कि किस प्रकार भूख के कारण लोग अपनी ईमान को बेच देते हैं। वैसे ये समस्याएँ सत्तर पचहत्तर के दशक की ही नहीं है, आज भी रोटी के लिए ईमान बेचने वाले लोग बथेरे मिल जाएंगे पर उन्हें बेईमान कहना तो सचमुच नाइंसाफी होगी

'बेचता यूँ ही नहीं आदमी ईमान को
भूख ले जाती है ऐसे मोड पर इंसान को'

(धरती की सतह पर पृ. 59)

अदम प्रेमचन्द से काफी प्रभावित दिखाई पड़ते है। प्रेमचन्द की रचनाओं में जिस प्रकार भूख का चित्रण हुआ है, वे ऐसी भूख अपने गाँव के आस-पड़ोस में देखते हैं। प्रेमचन्द का होरी पैसे लेकर अधेड उम्र के पुरुष से बेटी की सौदा करता है, वहीं गोंडवी की ग़ज़लों में स्थिति और भी भयावह है

'रोटी कितनी मंहगी है ये वो औरत बताएगी
जिसने ज़िश्म गिरवी रखके ये कीमत चुकाई है'

(समय से मुठभेड़ पृ.64)

यह उम्मीद की जा सकती है कि आने वाले दिनों में भी इस प्रकार के संकट पर बहस होती रहेगी पर उचित समाधान नहीं किए जाएंगे। समाधान हो जाने पर चुनावी मुद्दे का भयंकर अकाल हो जाएगा और हमारे जनसेवक ऐसा कभी नहीं होने देंगे।

फ़ाइलों में गाँव का गुलाबी मौसम

अदम की ग़ज़लें जिस गाँव का हाल बयां करती है वे तब भी और अब भी वैसा ही है। बदलाव के नाम पर दो-चार बिजली के खंभे, कुछ घरों में राशन कार्ड, रिश्वत देकर मिलने वाले घर और हर महीने के हिसाब से मिलने वाली डेढ़ लीटर केरोसिन, क्योंकि सरकार को भी पता है कि बिजली एक दिखावा है विकास का, चुनाव जीतने का। हाँ एक बात और जब शहरी लोग महंगे चश्मे के साथ गाँव और गँवार को देखने आते हैं तो उनको गाँव भिन्न-भिन्न रंगों में दिखाई पड़ता है। यह अलग बात है कि उनकी स्थिति मृग जैसी होती है। ग्रामीण विकास को लेकर जो वादे किए गए हैं वह एक जुमला है। अपवाद को छोड़कर। जिस तरह अदम अपनी बात होशो हवास में कहते हैं मैं भी होशो हवास में कह रहा हूँ। इस बीच गाँव में चुपके से किसी ने अपने नफे के वास्ते ज़हर घोल दिया है। गाय और गोबर के बीच उलझा हुआ गाँव अब न देखने लायक है और न ही दिखाने लायक। प्रधान के दालान में अब पाकिस्तान की चर्चा ऊँची आवाज़ में होने लगी है। एक समय था जब पड़ोस के राफ़िक और रामचंदर रामनवमी और ईद पर एक-दूसरे के घर जाते थे, अब वे एक-दूसरे को शक की नज़र से देखने लगे हैं। बदलाव का यह मंजर पता नहीं गाँव को कहाँ लेकर जाएगा? अदम गोंडवी इस चिंता से बीमार जान पड़ते हैं। पर वह कलम के फ़नकार हैं। वे इन बातों को दरकिनार कर सत्ता और पूँजीपतियों से जिस प्रकार के प्रश्न करते हैं वह एक जनकवि की निशानी है। शहरी लोगों के लिए गाँव का क्या सम्मान है इसे बताने की जरूरत नहीं। अगर आप गाँव से हैं तो यह बात जरूर जानते होंगे। उनकी मजबूरी का मज़ाक सब तो नहीं बनाते पर कुछ लोग बनाते हैं

'खुद की लाश अपनी कंधों पर उठाए हैं
ऐ शहर बाशिंदों हम गाँव से आए हैं'

(धरती की सतह पर पृ.76)

दरभंगा से पानीपत, अंबाला, चंडीगढ़ होते हुए गाड़ी संख्या 15211 जननायक एक्सप्रेस किसी सुविधाभोगी लोगों को उठाकर इन शहरों में या सरदारों के दरवाजे नहीं लाती हैं, उन्हें लाती है पेट की भूख। बच्चों की सुनी आँखें और उनका पिचका पेट। अदम ऐसे ही मजदूर की मजबूरी बहरी-गूंगी हुकुमत को सुनाना चाहते हैं, जो किसी भी समय की हुकूमत को मंजूर नहीं होता है। अदम गाँव की पीड़ा बयान करते हुए कहते हैं कि

'फटे कपड़ों में तन ढाँके गुजरता हो जहां कोई
समझ लेना वो पगडंडी 'अदम' के गाँव जाती है'

(धरती की सतह पर, पृ.11)

अदम भले ही गोंडवाना में पैदा हुए हो पर सारे भारत के गाँवों की समस्याओं को ठीक-ठीक देख रहे थे।

किसी गाँव की पहचान फटे चिथड़े से अगर आज भी हो तो विकास की डंका पीटने वाले हुकूमत को शर्म से डूब मारना चाहिए। पर क्यों मरे? आज भी जिस गाँव का मजदूर अस्सी रुपए का हिसाब 'चार बीस' करके जोड़ते हैं। उन्हें बहलाना फुसलाना पर्वत तोड़ परिश्रम थोड़े न है। जनता चाहे अमीर हो या गरीब सरकार की नज़रों में महज़ एक वोट होती है। ऐसा बहुत कम होता है जब एक मजदूर कवि मजदूर की व्यथा लिखें। पर अदम हिंदुस्तान के इकलौते कवि हैं जो एक हाथ में कुदाल और दूसरे हाथ में कलम से मजदूरों की व्यथा दर्ज करते हैं।

सत्ता से सवाल करने वाले अब देशद्रोही कहलाते हैं

अदम गोंडवी बिना लाग-लपेट अपने समय की सत्ता से सवाल करते हैं। यह दुखद है कि वे जिन सवालों का उत्तर चाहते हैं वह न तो तब की सत्ता से मिले और न ही अब की सत्ता से मिलते दिखाई पड़ रहे हैं। सत्ता के खिलाफ लिखने वाले हमेशा के लिए सरकार विरोधी हो जाते हैं, चाहे वह सरकारें किसी की भी हो। अदम के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। वे हर दौर के सरकारी तंत्र से बेखौफ़ टकराते और भिड़ते रहे। वे उस दौर के कवि हैं जिस दौर में पूरा देश मंदिर-मस्जिद में उलझकर जल रहा था। हिन्दू-मुस्लिम दंगे फैलाए जा रहे थे। बाबरी और गोधरा कांड को भी कवि ने महसूस किया था। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता को बाँटने के लिए जो ग़ज़लें लिखी वह आज भी किसी दंगे में हताहत लोगों के बीच जनवादी गीत जैसी है। हिन्दू-मुस्लिम के नाम पर तब भी घर जलाए जाते थे आज भी जलाए जा रहे हैं। अदम इसे सियासी करतूत बताते हैं

'खुदा का वास्ता देकर किसी का घर जला देना
ये मज़हब की वफादारी हकीकत में सियासी है'।

(समय से मुठभेड़ पृ.55)

अदम विधायक निवास की चमक-दमक देखकर दंग है। उन्हें विधायक का निवास स्थान रामराज्य जैसा दिखाई पड़ता है। तमाम चिंताओं से मुक्त होकर आज की जनता को भी इस रामराज्य का दर्शन करना चाहिए

'काजू भुने प्लेट में व्हिस्की गिलास में
उतरा है रामराज्य विधायक निवास में

(धरती की सतह पर पृ.66)

अदम की कविता साम्प्रादायिक घृणा फैलाने वाली राजनीति को ऐसी तैसी कर देती है।

'हिंदू या मुस्लिम के एहसास को मत छेड़िये,
अपनी कुर्सी के लिए जज़बात को मत छेड़िए'

(धरती की सतह पर, पृ. 84)

अदम व्यवस्था को देखकर कहने पर मजबूर हो जाते हैं कि जब-जब जनता गरीबी और भुखमरी के खिलाफ़ जंग लड़ने की तैयारी करती हैं तब-तब पूँजीपतियों के बचाव में सरकारें आकर खड़ी हो जाती हैं। जिसे जेल के अंदर होना चाहिए था वे संसद में बैठकर न्याय की बात करने लगते हैं

'ये अमीरों से हमारी फैसलाकुन जंग थी
फिर कहाँ से बीच में मस्जिद मंदिर आ गए
जिनके चेहरे पर लिखी थी जेल की ऊची फसील
रामनामी ओढ़कर संसद के अंदर आ गए

(समय से मुठभेड़ पृ.31)

'चमारों' की गली में कृष्णा की चीख

जिस प्रकार नागार्जुन की कविता हरिजन गाथा कविता न रहकर एक रिपोर्ट बन गयी उसी प्रकार अदम गोंडवी की कविता 'चमारों की गली' सिर्फ कविता न रहकर जातिवाद और दंगई ब्राह्मणवाद के लिए अमिट दाग बन गयी। अदम की कई ऐसी ग़ज़लें हैं जो हमेशा याद किए जाएंगे पर 'चमारों की गली' कविता सबसे अलग है। हाल के दिनों में घटने वाली घटनाओं को याद कर अदम की याद ताजा हो जाती है। हिन्दी कविता जगत में कुछ ऐसी भी कविताएं लिखी गयी हैं जिनका ताल्लुकात वास्तविक घटनाओं से रहा है। चमारों की गली एक खौफ़नाक कविता है जिसमें जितनी समस्याएँ प्रत्यक्षतः दिखती हैं उससे अधिक समस्याओं के संकेत सूत्र बिखरे पड़े हैं इस कविता में। न्याय व्यवस्था का यह नमूना देखिए

'भेजता भी तो नहीं ससुराल इनको हरखूआ
फिर कोई बाँहों में इनको भींच ले तो क्या हुआ'

दूसरी पंक्ति में जमाना बदलने की आहट सुनाई पड़ती है

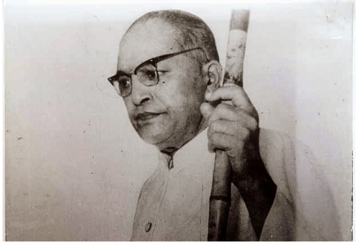
'क्या कहे सरपंच भाई! क्या ज़माना आ गया
कल तलक जो पाँव के नीचे था रुतवा पा गया'

(धरती की सतह पर पृ.102)

कहा जा सकता है कि अदम गोंडवी एक ऐसे ग़ज़लकार के रूप में हमारे सामने आते हैं जिन्होंने लिखा तो बहुत कम पर जितना लिखा वह बेशकीमती है।

संपर्क - शोधार्थी, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ (उ.प्र.),
संपर्क - 8999387153

आत्मकथ्य



तीन गुरु और तीन उपास्य आदर्शों की प्रेरणा से मेरा जीवन बना है

◆ डा. भीमराव आंबेडकर

(दिनांक 28 अक्तूबर, 1954 को डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर को उनके हीरक महोत्सव के उपलक्ष्य में मुंबई के पुरंदरे स्टेडियम में आयोजित भव्य, अपूर्व समारोह में 1 लाख 18 हजार रुपयों की थैली अर्पण की गई। यह सारा पैसा डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर अपने स्वास्थ्य के लिए खर्च करें यह विनती हीरक महोत्सव समिति के सचिव आयु. शां. अ. उपशाम और आयु. आर. डी. भंडारे ने किया। उनकी इस विनति का सभा में उपस्थित 30 हजार दर्शकों ने तालियों के साथ स्वागत किया। लेकिन, "अपना पसीना बहा कर, मेहनत से कमाया हुआ गरीब जनता का पैसा मेरे जैसे बैरिस्टर को स्वीकारना बेशर्मी है" कह कर डॉ. बाबासाहेब ने वह सारी राशि मुंबई में बनाई जा रही इमारत के फंड में देने की घोषणा कर दी। इस अवसर पर दिया गया वक्तव्य आंबेडकर के जीवन के कई पहलुओं पर प्रकाश डालता है। प्रस्तुत है उसका अंश)

मित्रों, आज यहां बैठा हूं तो मेरे जीवन में अब तक जो घटनाएं घटी हैं वे सभी फिल्म की तरह आंखों के सामने आकर खड़ी हैं। मैं कहां पैदा हुआ, मेरे पिताजी मुझे कहां-कहां लेकर गए, मेरे साथ क्या-क्या हुआ यह सब कुछ मेरी आंखों के आगे खड़ा हुआ है। लेकिन मुझे यहां एक बात बतानी है और वह यह कि मेरी उम्र के 60 साल पूरे हुए इसका क्या सबूत है? (हंसी) मैं किस साल पैदा हुआ इसका कोई रिकार्ड नहीं है। क्योंकि मेरे पिताजी सिक्स पायोनियर बटालियन में थे। बाद में वे सेवन पायोनियर बटालियन में गए। तब उन्हें मेरा अपने बेटे के रूप में कोई महत्व महसूस नहीं हुआ था। उन्होंने मेरे पैदा होने की तारीख लिख कर नहीं रखी। कितनी छोटी बात है ये। लेकिन वे नहीं कर पाए। आज जो पैदा होने की तारीख है वही सच है ऐसा कोई कह नहीं सकता।

हालांकि मेरे बारे में दो-तीन बातें साफ तौर पर कही जा सकती हैं। राजपूताने में महू में मेरा जन्म हुआ। इसलिए मेरा कोंकण के साथ कोई रिश्ता नहीं रहा। पिताजी कोंकण के ही हैं। लेकिन नौकरी के कारण उन्हें राजपूताने में जाना पड़ा। इस कारण मेरा जन्म महू में हुआ यह बात पक्की है। दूसरी बात कि मेरा जन्म ठीक बारह बजे हुआ। उस वक्त मेरे पिताजी नौकरी पर थे और मेरी मां की जच्चगी चल रही थी। मेरा पिंड बहुत बड़ा था। कहते हैं मेरे पैदा होते समय मेरी मां को बहुत तकलीफ हुई। मेरे पिताजी को चिंता थी। लेकिन आखिर एक दाई ने आकर उनसे कहा कि, अंदर जाओ, बेटा हुआ है।

तीसरी बात यह कि, मैं मूल नक्षत्र में पैदा हुआ था। ज्योतिषि ने बताया कि यह बच्चा बहुत बुरा है। इसकी मां जल्दी मरेगी। इस कारण अन्य भाई-बहन मुझसे नफरत करने लगे। वे कहते, यह बच्चा मां के लिए बुरा है। आखिर हमारी मां जल्द ही गुजर गई। मेरे जन्म के बारे में इस प्रकार तीन बातें बताई जा सकती हैं।

मेरे बचपन के बारे में खुद मुझे बड़ा आश्चर्य महसूस होता है। मेरे 12-13 साल का होने तक सभी लोगों को पूरे यकीन के साथ लगता था कि यह बच्चा अपने कुल के लिए कलंक साबित होगा। यह कुछ नहीं कर पाएगा। क्योंकि, मै बारह-तेरह साल के होने तक लंगोट के अलावा कोई कपड़ा नहीं पहनता था। (हंसी) साथ ही हर घर के दरवाजे पर जाकर पूछता था कि - क्या आपके घर की लकड़ियां तोड़नी हैं? पहले शिक्षा में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं थी। मां के गुजर जाने के बाद मेरी बुआ ने मेरा लालन-पालन किया। मुझे लगता था, पढ़ कर करूंगा क्या? छह महीनों तक मैंने माली का व्यवसाय किया। मिलिट्री कैंप में बाग हुआ करते थे। वहां के माली के बेटे से संगत की। मिट्टी-पत्थर उठाए। जमीन साफ की। नल से बाग को पानी देना था, लेकिन वह मुझसे नहीं हुआ। तब मैंने घर के ऊपर लगे सारी खपरैलें निकालीं और उनसे नालियां बना दीं। अब लगता है कि क्या थी मेरी जिंदगी भी।

जब हम सातारा में थे तब अन्य सुबेदार नाईक भी थे। उनके घरों के आगे एक कूड़ेदान था। गोबर-कूड़ा उसमें

पड़ा रहता। उस कूड़ेदान के किनारे एक गूलर का पेड़ था। मैं पेड़ पर चढ़ने में एकदम निपुण था। बंदर भी शायद पेड़ पर इतनी जल्दी नहीं चढ़ पाते होंगे। अब मेरे पैर कमजोर हो गए हैं। मैं उस पेड़ पर चढ़ता और कंबल बिछा कर सो जाता। मन भर जाता तो ऊपर से ही कूड़ेदान में बिखरी राख में छलांग लगा कर उतरता। उस वक्त सतारा में प्लेग फैला हुआ था। लोग कहते कि कई लोग प्लेग से मरे लेकिन इसको पता नहीं क्यों प्लेग नहीं होता। ऐसा मेरा हाल था। एक बार कसाई तीन रुपयों में बकरी देने के लिए तैयार नहीं था। तब हमने वसूली की और तीन रुपयों में दो बकरियां लेकर आए। तब हम लंबे बांस लेकर बकरियों को चारा खिलाते थे। किसी ने बताया कि ये बकरियां सींगवाली हैं, सींगवाली बकरियां अच्छी नहीं होती, बिना सींग वाली बकरियां अच्छी होती हैं। मेरा बचपन ऐसा ही बीता। उस समय इस व्यवस्था में अंधविश्वास कूट-कूटकर भरा पड़ा था।

घर में कई लोग मेरे लाड़ करते। मेरी बुवा का मैं बहुत लाड़ला था। उसने सबको हड़का कर रखा था। 'बिन मां का बच्चा है, उसे डराया धमकाया मत करो' इसीलिए, मैंने मिली आजादी का पूरा फायदा उठाया। सबको यही लगता था कि इस बच्चे के हाथों कुछ अच्छा नहीं होने वाला। आज अगर मेरा यह सब देखने के लिए वे यहां होते तो कितना अच्छा होता। इसप्रकार मेरा बचपन गुजरा। आप अब समझे होंगे कि फिर मेरे जीवन में कितनी क्रांति आई। मैं अगर चरवाहा बनता या मेहनत-मजदूरी का काम करता तो आज इस पद तक नहीं पहुंच पाता। मेरे पिताजी हमेशा मुझसे कहा करते थे। अच्छा काम सीखो। इन सारी यादों को बटोर कर एक चरित्र लिखने का मेरा खयाल है। (तालियों की गड़गड़ाहट) लेकिन चरित्र नहीं एक छोटी-सी किताब लिख रहा हूं, 'माझं बालपण' (मेरा बचपन), उसमें ये सारी बातें मैं विस्तार से लिखूगा।

मेरे तीसरे आदर्श हैं ज्योति बा फुले। ब्राह्मणेतरों के सच्चे गुरु वही हैं। दर्जी, कुम्हार, नाई, कुर्मी, माली, मछुआरे, मानंग, चमारों को इंसानियत के पाठ उन्होंने ही पढ़ाए हैं। पुरानी राजनीति में हम ज्योतिबा की राह से ही जा रहे थे। आगे चल कर मराठा हमसे अलग हुए। ... कोई कहीं भी जाए, लेकिन हम ज्योतिबा की राह पर ही चलेंगे। साथ में कार्ल मार्क्स को लेंगे या किसी और को लेकिन ज्योतिबा का मार्ग नहीं छोडेंगे।

ऐसी कोई बात नहीं कि मुझमें कुछ गुण पैदाइशी थे और इसीलिए मैं इस पद तक पहुंच पाया। मेरा जीवन जिस प्रकार चल रहा था उसी प्रकार अगर चलने दिया होता तो मैं एक नीतिपरक आदमी बनता। लेकिन मुझे अपनी याद थी। मेरी जिंदगी में जो मोड़ आया वह क्यों आया, कैसे आया इसकी वजह मैं बताने वाला हूं।

मेरे तीन गुरू हैं। हरेक के गुरु तो होते ही हैं। मेरे भी हैं। मैं कोई संन्यासी अथवा बैरागी नहीं हूं। मेरे गुरु हैं। मेरे पहले आदर्श हैं बुद्ध। मेरी उम्र दस-बारह साल की हुई होगी उस समय मेरे पिताजी कबीरपंथी साधु थे। मुझे यह तभी से याद है। मेरे पिताजी का घर धर्मासन कहा जा सकता है। विद्यासन भी कहा जा सकता है। मेरे पिताजी विद्या के भक्त थे और धर्म के चहेते। मेरे बचपन में रामायण-महाभारत आदि सभी ग्रंथ उन्होंने मुझसे रटवा लिए थे। उनके अभ्यास करवाते थे। रामायण-महाभारत पढ़ कर मेरे मन पर बहुत गहरा असर हुआ। मेरे पिताजी मुझसे कहते, 'हम गरीब हैं इसलिए डरने की कोई बात नहीं है। तुम विद्वान जरूर बनोगे, क्यों नहीं बनोगे?' एक बार मैंने कोई परीक्षा पास की थी। उस वक्त चॉल के लोगों ने मेरे पिताजी की इच्छा न होते हुए भी केलुस्कर की मदद लेकर मेरा सम्मान करने का कार्यक्रम रखने की सोची। मेरे पिताजी कहते, नहीं कराना है सत्कार। बच्चों का सत्कार करो तो उन्हें लगता है कि वे नेता बन गए हैं। (हंसी और तालियां) लेकिन तब मेरा सत्कार हुआ। और दादा केलुस्कर ने मुझे बुद्ध के चरित्र की एक किताब भेंट में दी। उस चरित्र को पढ़ने के बाद मुझमें एक अलग ही प्रकाश ने जन्म लिया। हनुमान, सीता, राम वनवास गए। धोबी के कहने पर सीता का त्याग किया, कृष्ण की सोलह हजार पत्नियां आदि बातें कुछ भयंकर ही लगीं। ये बातें फिर मेरे मन में जड़ें ही नहीं पकड़ पाई। लेकिन बुद्ध धर्म के बारे में अध्ययन के बाद आज तक मेरे मन पर पकड़ है। मुझे पक्के तौर पर लगने लगा है कि दुनिया का कल्याण केवल बुद्ध धर्म ही कर पाएगा। हिंदू लोगों को अगर अपना राष्ट्र जिंदा रखना हो तो बौद्ध धर्म को ही स्वीकारना होगा यह मैं हमेशा कहता आया हूं।

मेरे दूसरे आदर्श हैं कबीर। मेरे पिताजी कबीर पंथी थे। सो कबीर के जीवन और दर्शन का मुझ पर बड़ा गहरा असर हुआ। मेरी राय में कबीर को बुद्ध के दर्शन का सही मतलब समझ आया था। मैंने किसी को बड़ा नहीं कहा है। गांधी को मैंने कभी महात्मा नहीं कहा। गांधी हमेशा छल-कपट में विश्वास करते थे। क्योंकि कबीर ने कहा है - मनुष्य होना कठिन है! तो साधु क्या बनें! जो इंसान नहीं बना वह महात्मा कैसे बनेगा?

और मेरे तीसरे आदर्श हैं ज्योतिबा फुले। ब्राह्मणेतरों के सच्चे गुरु वही हैं। दर्जी, कुम्हार, नाई, कुर्मी, माली, मछुआरे, मानंग, चमारों को इंसानियत के पाठ उन्होंने ही पढ़ाए हैं। पुरानी राजनीति में हम ज्योतिबा की राह से ही जा रहे थे। आगे चल कर मराठा हमसे अलग हुए। कोई कांग्रेस में जूठन खाने गया। उन्हीं में से हमारे रा. ब. बोले हिंदू महासभा में गए। वह यहां उपस्थित हैं ही। कोई कहीं भी जाए, लेकिन हम ज्योतिबा की राह पर ही चलेंगे। साथ में कार्ल मार्क्स को लेंगे या किसी और को लेकिन ज्योतिबा का मार्ग नहीं छोडेंगे।

इस प्रकार ये मेरे तीन जीवन आदर्शों के हैं। इनकी सीख से मेरा जीवन बना है। इनके अलावा मेरे तीन उपास्य प्रेरणा भी हैं। किसी के मरीआई, खंडोबा जैसे भगवान होते हैं मेरे भी तीन भगवान हैं।

मेरी पहली प्रेरणा है विद्या। विद्या के बगैर इंसान को शांति या इंसानियत मिलना संभव नहीं है। विद्या सभी को मिलनी चाहिए। वह महासागर की तरह है। बुद्ध ने एक बार कहा है कि बुद्ध धम्म शुद्ध धर्म है। यहां भेदभाव नहीं है। श्रमण, भिक्षु, ब्राह्मण, भंगी सब एक हैं। मेरे संघ में आने से पूर्व उनका जो भी नाम रहा हो। सब एक हैं। नाम चाहे जो हो - नदी, नाला, यमुना हो, ब्रह्मपुत्र हो, गंगा हो, गोदावरी हो, सभी नदियां अपने उद्गम से निकल कर सागर में जाकर मिलीं। सबका पानी जब मिल गया तब यह बता नहीं पाएंगे कि यह गंगा का पानी है या गोदावरी का। मेरा संघ महासागर की तरह है। यहां जाति-पांति नहीं। आप सभी एक हैं।

आपकी विद्या पाने की चाह है तो उसे सफल कीजिए। जिस प्रकार इंसान को अगर जिंदा रहना हो तो उसे अनाज की जरूरत होती है उसी प्रकार उसे विद्या की जरूरत होती है। ज्ञान के बगैर वह क्या कर सकता है? ब्रह्मदेश में 90 प्रतिशत लोग सुशिक्षित हैं। आज भारत में 90 प्रतिशत लोग निरक्षर हैं। ब्राह्मणों ने हमें विद्या नहीं दी, इसीलिए ऐसा हुआ है। धर्म के कानून ने हमारी शिक्षा की राह में रोड़े अटकाए। हमारी विद्या छीन ली। हमारे लोग समझते कि पत्थर ही विद्या है, इसीलिए हमारी धार्मिक मान्यताएं नीचे लुढ़कती गई। पत्थरों की पूजा करने वाले भक्त हममें हर जगह हैं। तुकाराम ने एक जगह कहा है 'नवस सायासे कन्या-पुत्र होती, तरी कासया करणे लागे पती!' इसका अर्थ यह हुआ कि अगर गंगा उपवास करके संतान हुआ करती तो उसे शादी करके या पति की जरूरत ही नहीं पड़ती। इसकी वजह है। उनके पास विद्या नहीं थी। विद्या बहुत बड़ी चीज है। मुझे विद्या के प्रति पागलपन की हद तक लगाव है। ब्राह्मणों के घरों में नहीं होंगी उतनी किताबें आज दिल्ली के मेरे घर में हैं। मेरे पास कुल 32,000 किताबें हैं। है किसी ब्राह्मण के पास इतनी किताबें? दिखा दें वो। ठाकुर एंड कंपनी के हजारों रुपयों की उधारी के बिल मुझ पर हैं। उधार का माल मुझे कहीं भी मिलता है। जहां मेरी उधारी बाकी रह जाती है वहां मैं अपनी गाड़ी ले जाकर खड़ी कर देता हूं। इतना मुझे विद्या के बारे में पागलपन है। इस प्रकार हर किसी को विद्या से प्रेम होना चाहिए। किसी की रांड होती है। वह दूसरे गांव में रहती है। मान लीजिए रात बारह बजे उसे उसकी याद आती है। फिर वह रात में ही उठ कर चल देता है। न शमशान देखता है न और कुछ। बस निकल पड़ता है। उसके घर पहुंचता है। इतना प्रेम जब पुस्तकों से होगा तभी वह विद्या का सच्चा पुजारी बनेगा। मैं 24 घंटे विद्या की पूजा करता रहता हूं।

मेरी दूसरी प्रेरणा है - स्वाभिमान। मैंने किसी से कोई याचना नहीं की। मेरा लक्ष्य था कि मेरा पेट तो भरना चाहिए और अपने लोगों की सेवा भी करनी होगी। डॉ. परांजपे की विनती से एक महाविद्यालय में इकॉनॉमिक्स का प्रोफेसर बना। तब उन्होंने मुझसे तेरह भाषण देने के लिए कहा। मैंने कहा केवल चार भाषण दूंगा। ठीक लगे तो रखिए या फिर मेरे लिए अपनी राह खुली है। क्योंकि, मुझे अपने लोगों की सेवा करने के लिए समय की जरूरत थी। पोयबावड़ी के नाके की खोली में मैंने टुकड़ा चावल की रोटी खाई। लेकिन समाज सेवा को छोड़ कर भारी तनख्वाह की राह पर नहीं गया। राह अपने आप बनती चली गई। लोगों ने थैलियां स्वीकार कर घर बनाए। मेरी जानकारी वाले एक नेता से मैंने सुना है कि 47 हजार के प्रॉमिसरी नोट लिख कर दिए और लोगों ने जब लाख रुपयों की थैली अर्पण की तब वह कर्जा लौटाया। मैं ऐसा नहीं करना चाहता। मैं अपना पेट खुद भर कर जो भी समाज की सेवा करनी थी वह की। मैं नौकरी करना ही

नहीं चाहता था। गवर्नर जनरल कोई भी आए, मेरी उससे दोस्ती हुआ करती थी। लेकिन मैंने किसी से मुझे फलां बनाइए, मुझे फलां जगह दीजिए जैसी कोई याचना नहीं की। हां, औरों के लिए मैंने कुछ अर्जियां दी होंगी। लेकिन अपने लिए चिट्ठी लिखी हो तो कोई दिखा दे। एक्जीक्यूटिव काउंसिलर होने की मेरी बड़ी तीव्र इच्छा थी। वह पूरी हो गई। अब मुझे ना पेंशन, ना तनख्वाह और ना प्रोविडेंट फंड। कुछ भी नहीं। अंग्रेजी राज्य में एक बार काउंसेलरशिप ली। एक बार कांग्रेस के राज में। लेकिन वहां भी कांग्रेस के साथ मेरी नहीं पटी। मैं जज बन सकता था। लेकिन अपने को इस प्रकार फंसा कर करना क्या था? इसलिए, मैं बस यही बताना चाहता हूं कि दीनता नहीं होनी चाहिए। यह मानें कि मैं कुछ हूं। मैं भगवान को भी कमतर आंकता हूं इतना मेरा स्वाभिमान तेजस्वी है। मेरे स्वाभिमान का सामना कौन ईश्वर या देवता है वह भी नहीं कर सकता।

और मेरी तीसरी प्रेरणा है चरित्र। मुझे याद नहीं आता कि कभी मैंने अपनी जिंदगी में किसी के साथ दगाबाजी की हो, किसी को धोखा दिया हो या स्वार्थ के लिए पाप किया हो। इस बारे में मुझे गर्व महसूस होता है। मैं कई बार विलायत गया। लेकिन अब तक मैंने कभी शराब नहीं पी, सिगरेट नहीं पी। मुझे किसी चीज की लत नहीं। किताब और कपड़ा ये दो बातें बहुत प्रिय हैं। चरित्र संवर्धन का गुण मुझमें बड़े पैमाने पर है। यह बताने में मुझे बहुत गर्व महसूस होता है। इस प्रकार मेरे तीन गुरु और तीन प्रेरणा हैं। मैं इन्हीं से बना हूं। इन्हीं की शक्ति से मैं इस पद तक पहुंच सका हूं। मैं केवल कारण हूं। मैं केवल एक पुतला हूं जिनमें इनके कारण जान है। इसीलिए इनका अनुकरण कीजिए। आपने मेरा सम्मान किया, वह केवल व्यक्ति के लिए न होकर इन तीन उच्च मानवमूल्य के आदर्श के प्रति कृतार्थता के कारण किया यह कह कर मैं इस राशि को स्वीकार कर रहा हूं।

1919 साल से अर्थात् जब गांधी ने कदम रखा तभी से मैं राजनीति में हूं। इसके बावजूद मेरी कभी उनसे बनी नहीं। कई तरह की कोशिश हमने की। महाड का पानी का सत्याग्रह, नासिक का मंदिर प्रवेश का सत्याग्रह कई तरह के सत्याग्रह किए हैं। चवदार तालाब का पानी पीन के या कालाराम मंदिर में जाने से हमें अमरत्व नहीं मिलने वाला। वह हमारे अधिकार की लड़ाई मात्र थी। लेकिन किसी ने सहानुभूति नहीं दिखाई। अखबारों में हमारे व्यंग्यचित्र छपा करते थे। हमारे कार्यक्रमों के लिए संवाददाता नहीं आते थे। मैं बहिष्कृत भारत का संपादक था। 1919 से 1942 तक मैं संपादक रहा। एक बार केसरी में विज्ञापन भेजा। साथ में विज्ञापन की फीस के तौर पर 3 रुपयों का मनीऑर्डर भी भेजा। मनीऑर्डर वापस आ गया। जगह नहीं होने के कारण बताया गया था। टाइम्स ऑफ इंडिया को फोन किया। उन्हें लगा, कहां से ये भिखारी लोग परेशान करने आ गए। उन्होंने जवाब ही नहीं दिया। और अब हमेशा पीछे पड़े रहते हैं, रिपोर्ट दीजिए। ऐसे हालात थे। हमारे आंदोलन ने ऐसे-ऐसे दिन देखे हैं। मैं महार लोगों का असल में बहुत ऋणी हूं। महार लोगों के कारण ही मैं यह सब कर पाया। यह मेरा तीस सालों का अनुभव है। महार युद्धवीर हैं, लड़ सकते हैं, त्याग कर सकते हैं। अन्य कोई भी जाति यह नहीं कर पाएगी। इसलिए, मेरी नजर में उनके मेरे ऊपर बहुत उपकार हैं। मैं यहां जातिवाचक उच्चारण कर रहा हूं इसलिए कोई मुझ पर आरोप कर सकता है। लेकिन मुझे अभिमान है कि मैं इस जाति में पैदा हुआ। इस स्थिति में अस्पृश्य समाज पहुंचा इसका बहुत सारा श्रेय आप पागलों की तरह है। महिलाओं का भी इसमें बहुत बड़ा हिस्सा है। 30 साल पहले महिलाएं बेहद और गलिच्छ तरीके से रहा करती थीं। तब महिलाएं मुझे बामण है' कहा करती थीं। वे कहतीं 'हमें बामण नहीं बनना'। आज ऐसे हालात नहीं हैं। लेकिन अभी हम शिखर तक नहीं पहुंचे हैं। मध्य पर पहुंचे हैं। ऊपर चढ़ रहे हैं। पैर कब फिसलेगा कह नहीं सकते। अभी संकट की स्थित बदली नहीं है मैं या वह नेता यह झगड़ा अब खत्म करना होगा। सार्वजनिक कार्य में मदद कीजिए। हजारों संस्थाएं दान-धर्म कर जाति का उद्धार करती हैं। कोकणस्थ ब्राह्मण, देशस्थ ब्राह्मण, प्रभू आदि ब्राह्मणों की संस्थाएं हैं। उन्होंने अपने छात्रों को विलायत भेजा है। बड़े पदों पर बैठाया है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए महीने का एक रुपया अगर देना तय किया तो साल के अंत तक कितना तो काम हो सकता है। मेरे अब ज्यादा से ज्यादा आठ-दस साल ही बचे हैं। बाबासाहेब हैं, इसलिए हमें कुछ नहीं करना कह कर नहीं चलेगा। मैं अब राजनीति से अलग होने वाला हूं। आपको खुद अपना जीवन उज्जवल बनाना है। त्याग, समर्पण, आदि, बल निःस्वार्थ भाव लगा कर काम कीजिए। मुझे इसी जन्म में आप अपने साथ क्या करते हैं यह देखने दीजिए। मरने के बाद मुझे कैसे पता चलेगा कि आपने अच्छा किया या बुरा किया? मैं आपको सचेत कर यह कह रहा हूं।

(स्रोतः आंबेडकर वांग्मय, वाल्युम 40)



भारतीय प्रजातंत्र का भविष्य क्या है?

◆ डा. भीमराव आंबेडकर

मुझे विषय दिया गया है... भारतीय प्रजातंत्र का भविष्य क्या है? कई लोग अभिमानपूर्वक इस विषय पर बोलते हैं मानों प्रजातंत्र ही शुरू से भारत देश की व्यवस्था रही हो। विदेशी लोग भी बातचीत के दौरान सम्मान प्रदान करते हुए- भारत का महान प्रजातंत्र और भारत के महान प्रधानमंत्री कह देते हैं।

भारतीय समाज जाति व्यवस्था के कीचड़ में इस कदर फंसा है कि यहां हर बात जाति के आधार से ही की जाती है। भारतीय समाज में प्रवेश के साथ ही आपको जातिव्यवस्था का स्वरूप दिखाई दे सकता है। भारतीय मनुष्य किसी भी अन्य व्यक्ति के साथ अन्न ग्रहण नहीं कर सकता अथवा विवाह नहीं कर सकता। इसका एक मात्र कारण होता है कि वह व्यक्ति उसकी जाति का नहीं है। एक भारतीय दूसरे भारतीय को स्पर्श भी नहीं कर सकता क्योंकि वह उसकी जाति से संबंधित नहीं होता । राजनीति में भी जाति व्यवस्था का प्रतिबिंब आपको दिखाई देगा। भारतीय मनुष्य चुनावों में किस आधार से मतदान करता है? वह किसी और को अपना मत नहीं देता, केवल अपनी जाति के उम्मीदवार को ही अपना मत देता है। अन्य सभी पार्टियों की तरह काँग्रेस भी चुनाव जीतने के लिए जातिव्यवस्था का दुरुपयोग करती है। सामाजिक रचना की पृष्ठभूमि पर चुनाव क्षेत्रों के उम्मीदवारों की फेहरिस्त जांचिए। आपको दिखाई देगा कि विशिष्ट चुनाव क्षेत्र में बहुमत वाले जाति के व्यक्ति को ही उम्मीदवारी दी जाती है। जातिव्यवस्था की खुले आम पक्षधर काँग्रेस पार्टी भी इसी व्यवस्था को बढ़ावा देती है।

औद्योगिक क्षेत्र में क्या दिखाई देता है? जो विशिष्ट व्यक्ति किसी उद्योग का मालिक होता है उसी की जाति के लोगों की उस उद्योग के उच्च वेतन लेने वाले अधिकारियों के पदों पर नियुक्ति होती है। अन्य लोग कम वेतन के निम्न पदों पर जिंदगी भर झूलते रहते हैं। व्यापार के क्षेत्र में भी यही तस्वीर दिखाई देगी! पूरे व्यापारसमूह पर एक ही जाति का नियंत्रण होता है और उसके दरवाजे पर पट्टी लटकी होती है कि किसी भी अन्य जाति के लोगों को प्रवेश नहीं है।

किसी तरह की जानकारी के मान लिया जाता है कि जहां गणराज्य होगा वहां प्रजातंत्र होगा ही। यह भी माना जाता है कि वयस्क मतदान पद्धति के सिद्धांतों के अनुसार संसद का गठन होकर कानून बनाने का काम विशिष्ट कालावधि तक लोगों द्वार चुने गए प्रतिनिधि करते हैं वहाँ प्रजातंत्र होगा ही। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रजातंत्र को एक राजनीतिक साधन माना जाता है और जहां यह

राजनीतिक साधन प्रचलन में हो वहां प्रजातंत्र का होना भी गृहित माना जाता है।

भारत में प्रजातंत्र है या नहीं है? सच क्या है? गणराज्य और जनतंत्र की तरह ही जनतंत्र और संसदीय शासन को समान माने जाने के कारण जो गड़बड़ पैदा होती है उसे दूर किए बगैर इन सवालों का सही जवाब सामने नहीं आ सकता है।

गणराज्य या संसदीय शासन पद्धति से प्रजातंत्र पूरी तरह भिन्न है। प्रजातंत्र की जड़ें, प्रशासन का प्रकार संसदीय हो या अन्य इसमें दिखाई नहीं देता है। प्रजातंत्र सहजीवन का एक तरीका है। लोगों के द्वारा निर्मित समाज में सामाजिक संबंध और लोगों के परस्पर के बीच के सहजीवन में प्रजातंत्र की जड़ें खोजनी पड़ती हैं।

'समाज' शब्द क्या ध्वनित करता है? संक्षेप में बताना हो तो जब हम समाज के बारे में बोलते हैं तब उसके बारे में हमारे मन में एकात्मकता की धारणा होती है। सामुदायिक प्रेरणा और व्यापक कल्याण की सार्वजनिक लक्ष्यों के प्रति निष्ठा, एक-दूसरे के प्रति चिंता और सहयोग ही समाज यह एकक के गुण होते हैं।

दान-धर्म के क्षेत्र पर एक नजर डालें। एकाध कोई अपवाद अगर छोड़ दें तो भारत में दान-धर्म भी जाति के आधार से ही किया जाता है। पारसी व्यक्ति अपनी मृत्यु के बाद अपनी सारी संपत्ति पारसी लोगों के नाम ही करेगा। जैन व्यक्ति की मृत्यु होती है तो वह अपनी सारी संपत्ति जैनियों के लिए ही आरक्षित रखेगा। मृत्यु के बाद मारवाड़ी अपनी संपत्ति मारवाड़ी समाज के लिए ही आरक्षित कर रखता है। ब्राह्मण की मृत्यु के बाद वह अपनी सारी संपत्ति ब्राह्मण के नाम ही रखता है। इस प्रकार राजनीति, उद्योग, वाणिज्य और शिक्षा किसी भी क्षेत्र में पिछड़ी जाति के लिए प्रवेश नहीं है।

जाति व्यवस्था की कुछ और भी खासियतें हैं। उनका बुरा असर होता है और प्रजातंत्र के लिए वह प्रतिकूल साबित होते हैं। जाति व्यवस्था की एक खासियत है श्रेणीबद्ध विषमता। जातियों का दर्जा समान नहीं होता है। वे एक-दूसरे के ऊपर खड़ी होती हैं। एक-दूसरे से उन्हें द्वेष होता है। नीचे से ऊपर की तरफ उनमें द्वेष होता है और ऊपर से नीचे की तरफ उनमें तिरस्कार और तुच्छता की भावना होती है। जातिव्यवस्था की इस खासियत के कारण होने वाले सबसे घातक परिणामों में हम परस्पर सहयोग की भावना और इच्छा को ही नेस्तनाबूत करना जोड़ सकते हैं।

भारतीय समाज में क्या ये आदर्श दिखाई देते हैं? इस समाज में व्यक्ति का अस्तित्व नहीं होता यह कई जातियों का समूह है। एक-दूसरे से विभक्त इन जाति समूहों में समान अनुभूति नहीं और परस्पर अनुकंपा भी नहीं। हालांकि, भारतीय समाज में उपर्युक्त आदर्श हैं अथवा नहीं हैं यह सवाल ही अप्रस्तुत साबित होता है। जातिव्यवस्था के अस्तित्व के कारण इन आदर्शों को, पर्याय से प्रजातंत्र को इस समाज से हमेशा के लिए निकाल बाहर किया है।

वास्तव में जाति और वर्ग में भिन्नता यह है कि जातिव्यवस्था की तरह वर्गव्यवस्था में पूर्ण बहिष्कार नहीं होता। जातिव्यवस्था का दूसरा बददिमाग परिणाम है विषमता। वास्तव में दिखाई देता है कि दो जातियों के बीच की आक्रोश और प्रतिक्रियाएं एकांगी होती हैं। उच्च जाति के लोग विशिष्ट तरीके से पेश आएं और निम्न जाति के लोग तय ढंग से ही प्रतिक्रिया दें। मतलब कि, विभिन्न जातियों को प्रोत्साहन की और उसके अनुरूप प्रतिक्रिया व्यक्त करने के समान मौके उपलब्ध न होने के कारण परिणामस्वरूप उनमें से कुछ को मालिक बनने की शिक्षा मिलती है और कुछ को गुलाम। जीवन के विभिन्न अनुभवों के मुक्त आदान-प्रदान को प्रतिबंधित किए जाने के कारण हर घटक अपने प्राकृतिक अधिकारों से वंचित रह जाता है। सो विशेषाधिकार वाले और प्राकृतिक अधिकार छीन गए लोगों के दो वर्ग समाज में पैदा होते हैं। इस प्रकार का विभाजन सामाजिक आदान-प्रदान (Socl al Endosmosls) को प्रतिबंधित करता है।

पर हमें निर्भर रहना पड़ेगा। जब तक हमारे पास अच्छे परिणामों के बारे में बुद्धिवादी निर्णय की कसौटियां नहीं होंगी तब तक किन निर्णयों को लागू करना चाहिए हम यह तय नहीं कर पाएंगे। सवाल यह है कि, न्यायपूर्ण और संगठित समाज बनाने के उद्देश्य की प्राप्ति की राह में जातिप्रथा समाज व्यवस्था का अनुल्लंघनीय रोड़ा दूर किए बगैर क्या भारतीय समाज इस उद्देश्य को प्राप्त कर सकेगा? जाति में विभाजित समाज रचना के अस्तित्व में होते हुए एक जैसा समाज निर्माण होना क्या संभव है या निर्माण किया जा सकता है? गलत मूल्यांकन और गलत वास्तव दर्शन के कारण सभी भारतियों के मन अनिश्चित हुए हैं। उन्हें गलत राह पर डाल दिया गया है। असंगठित और खंडित समाज विविध ढंग के प्रारूप और परिमाण निश्चित करता रहता है। ऐसे हालात में जाति के सवाल के

कारण हर भारतीय के लिए मन में सिलसिला रखना असंभव-सा हो गया

जातिव्यवस्था की तीसरी खासियत के साथ जुड़ी बुरी बात यह है कि वह प्रजातंत्र की जड़ें ही खोद देती है। हर जाति एक विशिष्ट व्यवसाय से बंधी होती है। हर व्यक्ति अगर औरों के लिए उपयोगी साबित होने वाली और अपने पसंद के व्यवसाय का अगर चुनाव करता हो तो निश्चित रूप से समाज संगठित रूप से स्थिर रहेगा। इस प्रकार पसंद-नापसंद का पता लगाना और समाजोन्नति के लिए उन्हें तैयार करना समाज का कर्तव्य है। लेकिन हर व्यक्ति में क्षमता और क्रियाशीलता की असीमित विभिन्नता होती हैं जो व्यक्ति को बनाती हैं। प्रजातांत्रिक समाज में व्यक्ति की सभी क्षमताओं के लिए खुली राह उपलब्ध करानी चाहिए। वर्गीकरण व्यक्ति के विकास की राह रोकता है और उद्देश्यपूर्ण तरीके से व्यक्ति के विकास की राह में रुकावटें पैदा करना प्रजातंत्र को जानबूझ कर नकारारना है।

जातिव्यवस्था कैसे खत्म की जा सकती है? इस मार्ग की पहली रुकावट है - जो जातिव्यवस्था का प्राण है - श्रेणीबद्ध विषमता। लोग जब उच्च और निम्न इन दो वर्गों में ही बंटे होते हैं तब उच्च वर्ग के साथ संघर्ष करने के लिए निम्न वर्ग का संगठित होना आसान होता है। लेकिन यहां निम्न जाति का एक ही वर्ग नहीं है यहां निम्न और अति निम्नों का वर्ग है। निम्न कभी अति निम्नों के साथ संगठित नहीं हो सकते। निम्नों को डर होता है कि अगर अति निम्नों का वर्ग स्तर ऊंचा करने में अगर सफल हुआ तो उसे और उसकी जाति को समाज में अपना स्थान गंवाना पड़ेगा।

इस मार्ग में दूसरी रुकावट यह है कि अपना सामाजिक हित किस बात में है इसे न पहचानने के कारण एक साथ कृति करते समय भारतीय समाज पंगु हो जाता है। प्लेटो के कहे अनुसार आखिर सामाजिक संगठन अंतिमत: जीवित साध्य के अहसासों पर निर्भर करता है। अगर हम अपने साध्य के बारे में नहीं जानते, अपना हित किसमें है इसके बारे में अगर हमें पता नहीं है तो सभी बातों के लिए आकस्मकिता और मन शिक्षा से क्या जातियों का विनाश हो सकता है? इसका जवाब हां भी होगा और नहीं भी। आज जो शिक्षा दी जा रही है उसका जातियों पर कोई असर नहीं होने वाला। वह जिस हालत में हो उसी हालत में बनी रहेगी। ब्राह्मण जाति इसका ज्वलंत उदाहरण है। उसमें सत-प्रतिशत लोग पढ़े-लिखे हैं। नहीं, उसमें से बहुसंख्य लोग उच्चशिक्षा प्राप्त हैं। इसके बावजूद कोई ब्राह्मण अपनी जाति के खिलाफ नहीं दिखाई देता। वास्तविकता यह है कि उच्च जाति के शिक्षा प्राप्त व्यक्ति के लिए शिक्षा प्राप्त करने से पहले की तुलना में जातिव्यवस्था बनी रहनी चाहिए ऐसा अधिक तीव्रता से लगने लगाता है। क्योंकि शिक्षा ही उसे बड़े पद प्राप्त करने का अधिक मौका देती है इसलिए जातिव्यवस्था बनाए रखने की दिशा में वह काम करने लगता है। इस प्रकार देखें तो जाति व्यवस्था को नष्ट करने में शिक्षा उपयुक्त साधन साबित नहीं होती। यह शिक्षा का नकारात्मक पहलु हुआ। भारतीय समाज के निचले स्तर के लोगों को शिक्षा दी जाए तो यही शिक्षा जातिव्यवस्था को पिघला देगी। शिक्षा से उनमें विद्रोह की भावना जागेगी। वर्तमान स्थितियों में उनके अज्ञान के कारण वे जातिव्यवस्था के समर्थक बने हुए हैं। एक बार उनकी आंखें खुल जाएं तो वे जातिव्यवस्था को नष्ट करने के लिए कटिबद्ध होंगे।

वर्तमान नीति का प्रमुख दोष यह है कि बड़े पैमाने पर शिक्षा दी जाने के बावजूद भारतीय समाज में जिन्हें उसकी असली जरूरत है उन्हें शिक्षा नहीं मिल पाना। भारतीय समाज के जिन लोगों का स्वार्थ जाति व्यवस्था के कारण साध्य होता है उसी स्तर के लोगों को अगर आप शिक्षा मुहैय्या कराते रहेंगे तो जातिव्यवस्था और मजबूत होती रहेगी। ऐसा न करते हुए भारतीय समाज के निम्न स्तर के जो लोग जातिव्यवस्था को उखाड़ फेंकना चाहते हैं उन्हें अगर शिक्षा दी गई तो निश्चित तौर पर जातिव्यवस्था ध्वस्त होगी। हर बार किसी भी प्रकार से तारतम्य का पालन न करते हुए भारत सरकार और अमेरिकन फाउंडेशन की शिक्षा की मदद करने की नीति जातिव्यवस्था को और मजबूत कर रही है। अमीर को और अमीर और गरीब को और गरीब बनाना दरिद्रता को समाप्त करने का मार्ग नहीं है। जातिव्यवस्था को समाप्त करने के लिए शिक्षा का एक साधन के तौर पर इस्तेमाल करने की नीति पर यह बात लागू होती है। जातिव्यवस्था को कायम रखना चाहने वालों को शिक्षा देने के कारण भारतीय प्रजातंत्र का भविष्य उज्जवल तो नहीं ही होगा, उल्टे यह नीति भारतीय प्रजातंत्र को संकट में डाल सकती है।

हस्ताक्षर/---

(बी. आर. आंबेडकर) 26, अलीपुर रोड़, नईदिल्ली

दिनांक 20 मई, 1956

विद्यार्थी और राजनीति

◆ भगतसिंह



(यह महत्वपूर्ण लेख जुलाई, 1928 में 'किरती' में छपा था। अनेक नेता विद्यार्थियों को राजनीति में हिस्सा न लेने की सलाहें देते थे। यह सम्पादकीय विचारों में छपा था, और सम्भवतः भगतसिंह का लिखा हुआ है।)

इस बात का बड़ा भारी शोर सुना जा रहा है कि पढ़ने वाले नौजवान (विद्यार्थी) राजनीतिक या पोलिटिकल कामों में हिस्सा न लें। पंजाब सरकार की राय बिल्कुल ही न्यारी है। विद्यार्थी से कालेज में दाखिल होने से पहले इस आशय की शर्त पर हस्ताक्षर करवाये जाते हैं कि वे पोलिटिकल कामों में हिस्सा नहीं लेंगे। आगे हमारा दुर्भाग्य कि लोगों की ओर से चुना हुआ मनोहर, जो अब शिक्षा-मन्त्री है, स्कूलों-कालेजों के नाम एक सर्कुलर या परिपत्र भेजता है कि कोई पढ़ने या पढ़ानेवाला पालिटिक्स में हिस्सा न ले। कुछ दिन हुए जब लाहौर में स्टूडेंट्स यूनियन या विद्यार्थी सभा की ओर से विद्यार्थी-सप्ताह मनाया जा रहा था। वहाँ भी सर अब्दुल कादर और प्रोफसर ईश्वरचन्द्र नन्दा ने इस बात पर जोर दिया कि विद्यार्थियों को पोलटिक्स में हिस्सा नहीं लेना चाहिए।

पंजाब को राजनीतिक जीवन में सबसे पिछड़ा हुआ(Politically backward) कहा जाता है। इसका क्या कारण है?क्या पंजाब ने बलिदान कम किये हैं? क्या पंजाब ने मुसीबतें कम झेली है? फिर क्या कारण है कि हम इस मैदान में सबसे पीछे है?इसका कारण स्पष्ट है कि हमारे शिक्षा विभाग के अधिकारी लोग बिल्कुल ही बुद्धू हैं। आज पंजाब कौंसिल की कार्रवाई पढ़कर इस बात का अच्छी तरह पता चलता है कि इसका कारण यह है कि हमारी शिक्षा निकम्मी होती है और फिजूल होती है, और विद्यार्थी-युवा-जगत अपने देश की बातों में कोई हिस्सा नहीं लेता। उन्हें इस सम्बन्ध में कोई भी ज्ञान नहीं होता। जब वे पढ़कर निकलते है तब उनमें से कुछ ही आगे पढ़ते हैं, लेकिन वे ऐसी कच्ची-कच्ची बातें करते हैं कि सुनकर स्वयं ही अफसोस कर बैठ जाने के सिवाय कोई चारा नहीं होता। जिन नौजवानों को कल देश की बागडोर हाथ में लेनी है, उन्हें आज अक्ल के अन्धे बनाने की कोशिश की जा रही है। इससे जो परिणाम निकलेगा वह हमें खुद ही समझ लेना चाहिए। यह हम मानते हैं कि विद्यार्थियों का मुख्य काम पढ़ाई करना है, उन्हें अपना पूरा ध्यान उस ओर लगा देना चाहिए लेकिन क्या देश की परिस्थितियों का ज्ञान और उनके सुधार सोचने की योग्यता पैदा करना उस शिक्षा में शामिल नहीं?यदि नहीं तो हम उस शिक्षा को भी निकम्मी समझते हैं, जो सिर्फ क्लर्की करने के लिए ही हासिल की जाये। ऐसी शिक्षा की जरूरत ही क्या है? कुछ ज्यादा चालाक आदमी यह कहते हैं - 'काका तुम पोलिटिक्स के अनुसार पढ़ो और सोचो जरूर, लेकिन कोई व्यावहारिक हिस्सा न लो। तुम अधिक योग्य होकर देश के लिए फायदेमन्द साबित होगे।'

बात बड़ी सुन्दर लगती है, लेकिन हम इसे भी रद्द करते हैं,क्योंकि यह भी सिर्फ ऊपरी बात है। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक दिन विद्यार्थी एक पुस्तक 'Appeal to the young, 'Prince Kropotkin' ('नौजवानों के नाम अपील', प्रिंस क्रोपोटकिन) पढ़ रहा था। एक प्रोफेसर साहब कहने लगे, यह कौन-सी पुस्तक है? और यह तो किसी बंगाली का नाम जान पड़ता है! लड़का बोल पड़ा- प्रिंस क्रोपोटकिन का नाम बड़ा प्रसिद्ध है। वे अर्थशास्त्र के विद्वान थे। इस नाम से परिचित होना प्रत्येक प्रोफेसर के लिए बड़ा जरूरी था। प्रोफेसर की 'योग्यता' पर लड़का हँस भी पड़ा। और उसने फिर कहा- ये रूसी सज्जन थे। बस! 'रूसी!' कहर टूट पड़ा! प्रोफेसर ने कहा कि 'तुम बोल्शेविक हो, क्योंकि तुम पोलिटिकल पुस्तकें पढ़ते हो।' प्रोफेसर की 'योग्यता' पर लड़का हँस भी पड़ा। और उसने फिर कहा- ये रूसी सज्जन थे। बस! 'रूसी!' कहर टूट पड़ा! प्रोफेसर ने कहा कि "तुम बोल्शेविक हो, क्योंकि तुम पोलिटिकल पुस्तकें पढ़ते हो।'

देखिए आप प्रोफेसर की योग्यता! अब उन बेचारे विद्यार्थियों को उनसे क्या सीखना है? ऐसी स्थिति में वे नौजवान क्या सीख सकते है?

दूसरी बात यह है कि व्यावहारिक राजनीति क्या होती है? महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस का स्वागत करना और भाषण सुनना तो हुई व्यावहारिक राजनीति, पर कमीशन या वाइसराय का स्वागत करना क्या हुआ? क्या वो पलिटिक्स का दूसरा पहलू नहीं? सरकारों और देशों के प्रबन्ध से सम्बन्धित कोई भी बात पोलिटिक्स के मैदान में ही गिनी जायेगी,तो फिर यह भी पोलिटिक्स हुई कि नहीं? कहा जायेगा कि इससे सरकार खुश होती है और दूसरी से नाराज? फिर सवाल तो सरकार की खुशी या नाराजगी का हुआ। क्या विद्यार्थियों को जन्मते ही खुशामद का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए? हम तो समझते हैं कि जब तक हिन्दुस्तान में विदेशी डाकू शासन कर रहे हैं तब तक वफादारी करनेवाले वफादार नहीं, बल्कि गद्दार हैं, इन्सान नहीं, पशु हैं, पेट के गुलाम हैं। तो हम किस तरह कहें कि विद्यार्थी वफादारी का पाठ पढ़ें।

सभी मानते हैं कि हिन्दुस्तान को इस समय ऐसे देश-सेवकों की जरूरत हैं, जो तन-मन-धन देश पर अर्पित कर दें और पागलों की तरह सारी उम्र देश की आजादी के लिए न्योछावर कर दें। लेकिन क्या बुड्ढों में ऐसे आदमी मिल सकेंगे? क्या परिवार और दुनियादारी के झंझटों में फँसे सयाने लोगों में से ऐसे लोग निकल सकेंगे? यह तो वही नौजवान निकल सकते हैं जो किन्हीं जंजालों में न फँसे हों और जंजालों में पड़ने से पहले विद्यार्थी या नौजवान तभी सोच सकते हैं यदि उन्होंने कुछ व्यावहारिक ज्ञान भी हासिल किया हो। सिर्फ गणित और ज्योग्राफी का ही परीक्षा के पर्चों के लिए घोंटा न लगाया हो।

क्या इंग्लैण्ड के सभी विद्यार्थियों का कालेज छोड़कर जर्मनी के खिलाफ लड़ने के लिए निकल पड़ना पोलिटिक्स नहीं थी? तब हमारे उपदेशक कहाँ थे जो उनसे कहते- जाओ, जाकर शिक्षा हासिल करो। आज नेशनल कालेज, अहमदाबाद के जो लड़के सत्याग्रह के बारदोली वालों की सहायता कर रहे हैं, क्या वे ऐसे ही मूर्ख रह जायेंगे? देखते हैं उनकी तुलना में पंजाब का विश्वविद्यालय कितने योग्य आदमी पैदा करता है? सभी देशों को आजाद करवाने वाले वहाँ के विद्यार्थी और नौजवान ही हुआ करते हैं। क्या हिन्दुस्तान के नौजवान अलग-अलग रहकर अपना और अपने देश का अस्तित्व बचा पायेंगे? नवजवानों 1919 में विद्यार्थियों पर किये गए अत्याचार भूल नहीं सकते। वे यह भी समझते हैं कि उन्हें क्रान्ति की जरूरत है। वे पढ़ें। जरूर पढ़े! साथ ही पालिटिक्स का भी ज्ञान हासिल करें और जब जरूरत हो तो मैदान में कूद पड़ें और अपने जीवन को इसी काम में लगा दें। अपने प्राणों को इसी में उत्सर्ग कर दें। वरना बचने का कोई उपाय नजर नहीं आता।

विद्यार्थियों के नाम पत्र

(भगत सिंह और बुटकेश्वर दत्त की ओर से जेल से भेजा गया यह पत्र 19अक्तूबर,1929 को पंजाब छात्र संघ, लाहौर के दूसरे अधिवेशन में पढ़कर सुनाया गया था। अधिवेशन के सभापित थे सुभाषचंद्र बोस)

इस समय हम नौजवानों से यह नहीं कह सकते कि वे बम और पिस्तौल उठाएँ। आज विद्यार्थियों के सामने इससे भी अधिक महत्वपूर्ण काम है। आनेवाले लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस देश की आज़ादी की लड़ाई के लिए जबरदस्त लड़ाई की घोषणा करने वाली है। राष्ट्रीय इतिहास के इन कठिन क्षणों में नौजवानों के कन्धों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ेगी। यह सच है कि स्वतन्त्रता के इस युद्ध में अग्रिम मोर्चों पर विद्यार्थियों ने मौत से टक्कर ली है। क्या परीक्षा की इस घड़ी में वे उसी प्रकार की दृढ़ता और आत्मविश्वास का परिचय देने से हिचकिचाएँगे? नौजवानों को क्रांति का यह सन्देश देश के कोने-कोने में पहुँचाना है, फैक्टरी कारखानों के क्षेत्रों में, गंदी बस्तियों और गाँवों की जर्जर झोपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रांति की अलख जगानी है, जिससे आजादी आएगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जाएगा। पंजाब वैसे ही राजनीतिक तौर पर पिछड़ा हुआ माना जाता है। इसकी भी जिम्मेदारी युवा वर्ग पर ही है। आज वे देश के प्रति अपनी असीम श्रद्धा और शहीद यतीन्द्रनाथ दास के महान बलिदान से प्रेरणा लेकर यह सिद्ध कर दें कि स्वतन्त्रता के इस संघर्ष में वे दृढ़ता से टक्कर ले सकते हैं।

22 अक्तूबर, 1929 के ट्रिब्यून (लाहौर) में प्रकाशित।

रामकुमार आत्रेय से अशोक बैरागी की बातचीत



1 फरवरी 1944 में हरियाणा राज्य के कैथल जिले के करोड़ा गाँव में जन्मे वरिष्ठ कथाकार रामकुमार आत्रेय एक बेहतरीन साहित्यकार थे। आत्रेय जी पेशे से अध्यापक थे। अदम्य जिजीविषा के स्वामी, जमीन से जुड़े और ग्रामीण पृष्ठभूमि के कथाकार आत्रेय जी का जीवन शुरू से अंत तक कठिन संघर्षों और पीड़ाओं की कहानी कहता है। भूमंडलीकरण के इस दौर में भी लोक उनकी अंतः चेतना में रचा बसा था। बालमुकुंद गुप्त सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित थे। 29 सितम्बर 2019 को आत्रेय जी का देहावसान हो गया। प्रस्तुत है आत्रेय जी से डॉ. अशोक बैरागी से आत्मीय संवाद का अंश - सं.

अशोक बैरागीः- आत्रेय जी जब आपने साहित्य पढ़ना और लिखना शुरू किया तो परिवार वालों की क्या प्रतिक्रिया रहती थी ?

रामकुमार आत्रेय जीः- उस समय मेरी तनख्वाह 100 रूपये थी। उसमें से मैंने कई पत्रिकाएँ मंगवानी शुरू कर दी और साहित्यिक पुस्तकें खरीदनी शुरू की। कई बार तनख्वाह से भी अधिक खर्च हो जाता और साथियों से उधार मांगना पड़ता था तब माँ मुझे डांटती थी कि ये पुस्तकें पढ़कर क्या बन जाएगा। मैं कहता मैं भी इनकी तरह बड़ा आदमी बनूंगा। रामधारी सिंह दिनकर क्रांतिकारी कवि के रूप में मुझे बड़े अच्छे लगते थे। शुरूआत में मैंने कविताएँ लिखी। पिता जी बचपन में ही गुजर गए थे। अतः माँ शुरु-शुरु में जहां डांटती थी वहीं बड़ी खुश भी होती थी कि विभिन्न परीक्षाएँ भी पास कर लेता है और मैं नौकरी भी शीघ्र ही लग गया था। अपने गाँव में एम.ए. अंग्रेजी करने वाला मैं पहला आदमी था। सन् 1972 मैं मुझे कविता पाठ के लिए आकाशवाणी ने बुलाना शुरू किया। तब माँ गली में रेडियो लेकर बैठ जाती और कहती देखो मेरा बेटा बोल रहा है। वे हर चौथे महीने बुलाते थे तो माँ बहुत ही खुश होती थी। पत्नी ने भी कभी कोई बाधा उत्पन्न नहीं। मुझे सुनकर और किताबों में छपा देखकर उसे भी बड़ी प्रसन्नता होती थी।

अशोक बैरागीः- दैनिक ट्रिब्यून के 'खरी-खोटी' कॉलम में अपने सामाजिक विशमताओं को लेकर बड़े ही तीखे और मार्मिक व्यंग्य लिखे हैं। प्रारम्भ में पत्रकारिता से आपका जड़ाव कैसे हुआ ?

आत्रेय जीः- अशोक भाई, पत्रकारिता से मेरा सीधा जुड़ाव नहीं रहा हैं। लेकिन पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ना, समाज के विषय में लिखना तथा आसपास की चीजों की जानकारी रखना मेरा शौक था। इस पत्र के संपादक सहगल जी, मेरे लेखन से प्रभावित थे। मेरे रिटायर होने पर उन्होंने ही मुझे यह काम दिया था। सहगल जी मुझे महेन्द्रगढ़ निवासी समझकर महेन्द्रगढ़ का संवाददाता बनाना चाहते थे। मैंने कहा - मैं तो कैथल का रहने वाला हूँ। तब उन्होंने मुझे दूसरा काम सौंपने को कहा। तब मैंने ही उन्हें साहित्य, समाज, धर्म, संस्कृति और राजनीति की अव्यवस्था को लेकर 'खरी-खोटी' कॉलम लिखने का सुझाव दिया। मैंने तीन साल तक लगातार उसमें लिखा।

अशोक बैरागीः- आत्रेय जी, आपका जीवन संघर्ष की गाथा है जिसका प्रभाव आपके लेखन पर भी आया है। फिर भी मैं आपसे जानना चाहता हूँ कि वे कौन-कौन से सरोकार हैं जो आपकी रचनाओं में पुनर्जीवित हुए हैं?

आत्रेय जीः- अशोक भाई, मेरा जीवन ठेठ गाँव और गरीबी में बीता है। मैंने बचपन से ही इन दोनों को करीब से देखा है। लेकिन हमारे पास अपनी कुछ जमीन थी। जैसा मैंने पहले बताया कि खाने के लाले पड़े हों ऐसी स्थिति तो बिल्कुल नहीं थी। रोटी हमें सम्मानपूर्वक मिली। मेरे एक ताऊ जी थे जो बनारस में संस्कृत के प्रोफेसर थे। उनसे भी काफी मदद मिली, मैंने गाँव में आस-पास ऐसे लोगों को देखा था जिसके पास चूल्हा जलाने के संसाधन भी नहीं थे। बच्चों के पास कपड़े और पुस्तकें तक नहीं होती थी। सामाजिक विषमता, जातीय भेदभाव को भी प्रत्यक्ष अनुभव किया था। मेरी माँ जातिप्रथा की समर्थक होते हुए भी भेदभाव और अत्याचार के विरूद्ध थी। जिनको लोग घरों मे प्रवेश तक नहीं करने देते थे मेरी माँ उन्हें पीढा, चौकी या कुर्सी देकर अन्दर बैठाती थी। चाय या खाने का सामान भी देती। यह अलग बात है कि फिर



देस हरियाणा पत्रिका द्वारा आयोजित कविता गोष्ठी में कुरुक्षेत्र के साहित्यकारों के साथ रामकुमार आत्रेय

उन बर्तनों को आग से निकालना नहीं भूलती थी। पर उनको सम्मान देती थी। माँ का यह स्वभाव और संस्कार मेरे भीतर भी कुलबुलाता था। इस प्रकार मेरे लेखन में सामाजिक विषमता, गरीबी, जातिप्रथा, बच्चों, औरतों और पशुओं के प्रति निर्मम व्यवहार का विरोध हमेशा रहा है।

अशोक बैरागीः- एक तरफ समग्र हिन्दी साहित्य है, तो दूसरी तरफ जन और लोकसाहित्य है। इनके मध्य परस्पर क्या संबंध है? आप कैसे पारिभाषित करेंगे?

आत्रेय जीः- लोकसाहित्य प्रायः लोकभाषा या बोली में लिखा जाता है। लोकसाहित्य में लोगों की हार्दिक इच्छाओं, प्यार-मुहब्बत, बिछोह, बहादुरी और उनकी जीवन शैली के संबंध में जो लोककथाएँ हैं जो प्रायः काव्यात्मक होती थी वे आती हैं - जैसे 'हीर-राँझा', 'जानी चोर' और 'आल्हा-ऊदल'। बाद में जो सांगी हुए जैसे - पं. लखमीचंद, बाजे भगत और मांगेराम इनके द्वारा लिखा और गाया हुआ सारा लोकसाहित्य है। दूसरा, जो साहित्यकार लोकभाषा या बोली में लिखते हैं वे भी लोक साहित्यकार माने जाएंगे। जनसाहित्य साधारण आदमी की चिन्ताओं, सुख-दुखों और सरोकारों को लेकर लिखा जाता है। वास्तव में सारा साहित्य ही जनसाहित्य होता है। सिर्फ मनोरंजन के लिए लफ़्जों का लफ्फाज बन जाना या मनगढ़ंत किस्से, कहानी लिखना ही उसे तो आप कह सकते हो कि वह जनसाहित्य नहीं है क्योंकि वह जनता का अधिक भला नहीं कर सकता। साहित्य में मनोरंजन के साथ मानसिक संस्कारों का परिष्कार, उनका निर्माण, चिन्तन दृष्टि पैदा करना और सीख देना भी आना चाहिए। जिसमें दूसरे के हित का भाव समाहित है वही साहित्य है। साहित्य, जनसाहित्य और लोकसाहित्य सभी का एक ही उद्देश्य है।

अशोक बैरागीः- समग्र साहित्यिक दृष्टि से देखें तो लोकभाषा या लोकसाहित्य का समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है। इसके क्या कारण हैं?

आत्रेय जीः- लोकभाषा और साहित्य का लिखित रूप नहीं है। इसके साथ मुख्य भाषा जैसे हिन्दी और अंग्रेजी को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है क्योंकि यह लिखित रूप में है और शिक्षा व रोजगार की भाषा है। विश्वविद्यालयों में इनकी पुस्तकें हैं, निर्धारित पाठ्यक्रम है और इनमें डिग्री व उपाधियाँ दी जाती है लेकिन लोकभाषा साहित्य के साथ ऐसा नहीं है। यह सारा मुद्रित नहीं है। इसका संशोधन व संपादन होना बाकी है। तभी इसका समुचित मूल्यांकन किया जा सकेगा। हमारे प्राध्यापक भी इसे कम पढ़ाना चाहते हैं। लोकभाषा साहित्य को पाठ्यक्रम से हटाना उसके महत्व को कम करना है। सरकारें लोकभाषा या साहित्य की अकादमियाँ तो स्थापित कर देती हैं लेकिन बाद में उनके संवर्धन और विकास के लिए कोई ध्यान नहीं देती हैं। सरकारें केवल इतना ही करती हैं जितने से उनका स्वार्थ पूर्ण होता है। यह भी ज्ञान और संस्कार का खजाना है, धरोहर है इसका संरक्षण और संवर्धन हर हाल में किया जाना चाहिए।

अशोक बैरागीः- लोकभाषा और साहित्य को विभिन्न पाठ्यक्रमों से हटाने के दुष्प्रभाव को आप किस रूप में देखते हैं ?

आत्रेय जीः- अशोक जी, विज्ञान हमें नई-नई चीजें जरूर सिखाता है लेकिन क्या नई चीज को पाने के चक्कर में पुरानी को रद्दी या बेकार होने के लिए छोड़ दें ? नहीं। दूसरी ओर आज विज्ञान के युग में सबकुछ ही अच्छा हो

रहा है ये भी तो सही नहीं है। देखिए, भारतीय सभ्यता और संस्कृति ग्रामीण है। भारत गाँव प्रधान राष्ट्र रहा है। आज एक कुलीन संस्कृति या जनरेशन आगे आ रही है। उसमें जो बच्चे हैं उन्हें कैसे पता चलेगा कि गाँव क्या है, हमारे पूर्वज क्या और कैसे थे ? यदि हम इसे पाठ्यक्रमों में नहीं रखेंगे और इस नयी जनरेशन के सामने नहीं लाएंगे तो यह जिंदा कैसे रहेंगे और कैसे आगे बढ़ेंगे। लोकसाहित्य में अपनेपन की मिठास है, अपनी भाषा और अपनी परम्पराएँ हैं। ये तो हमारी सांस्कृतिक जड़ें हैं।

अशोक बैरागीः- हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में आप अपनी भूमिका को कैसे रेखांकित करेंगे ?

आत्रेय जीः- मेरी भूमिका तो डॉ. साहब बहुत कम है। मैं इसे नगण्य मानता हूँ। हालांकि राष्ट्रीय स्तर पर कविता, कहानी और लघुकथा को लेकर छपा हूँ फिर भी मैं तो बहुत छोटा-सा कार्यकर्ता हूँ। इस भाषा में मैंने अध्यापन किया है, रोजगार कमाया है और इसमें लेखन आत्म संतुष्टि के लिए किया है। मेरे लिखे से कोई सीख ले या मनोरंजन हो मुझे अच्छा लगता है। मैं हिन्दी का दिया खाता हूँ और आंतरिक जुड़ाव हिन्दी के प्रति महसूसता हूँ। मेरे पाँच कविता संकलन, चार लघुकथा संग्रह, दो कहानी संग्रह और एक दोहा संकलन, (हरियाणवी लोकभाषा) में प्रकाशित हुए हैं। बस यही थोड़ा-सा लिखा है। जब कभी मौका मिलता है, मंच पर या गोष्ठी में वहां हिन्दी में हिन्दी का समर्थन करता हूं। बस यही मेरी भूमिका है।

अशोक बैरागीः- हिन्दी अपनी राजभाषा है, मातृभाषा है परन्तु आजादी के 67-68 साल बाद भी संवैधानिक रूप से यह राष्ट्रभाषा क्यों नहीं बन पाई ?

आत्रेय जीः-इसका कारण शुरु में जो लोग राजनीति में आये थे। वे अंग्रेजी पढ़े-लिखे थे और हिन्दी उनके लिए विदेशी भाषा जैसी थी। ऐसा नहीं कि वे हिन्दी नहीं जानते थे फिर भी उन्होंने स्वयं को अंग्रेज बनाकर पेश किया और आम जन और जनभाषा से दूरी बनाए रखी। इन अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में एक 'सुपरियोरिटी कम्पलेक्स' (श्रेष्ठता की भावना) था जो आज भी है। दूसरा, इन्हीं राजनीतिज्ञों ने दक्षिण के लोगों में एक गलतफहमी पैदा कर दी कि हिन्दी उनकी भाषाओं को खा जाएगी और उन्होंने हिन्दी के विरूद्ध एक आन्दोलन शुरू कर दिया। जबकि वे हिन्दी समझते हैं, बोलते हैं, अपना व्यवसाय भी करते हैं। इसके पीछे एक राजनीतिक षड्यंत्र हो गया है। अगर शुरु के 10 वर्षों बाद ही इसे राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया जाता तो आज वाली स्थिति नहीं होती। हमारे अनेक साथी ऐसे हैं जिनका प्रांत, भाषा, शिक्षा, आचार-विचार हिन्दीमय होते हुए भी हस्ताक्षर अंग्रेजी में करते हैं। वास्तव में यह एक इगो है। उनमें दूसरों से श्रेष्ठता का भाव हमेशा रहता है। उस समय आधुनिक शिक्षा, विज्ञान, गणित आदि अंग्रेजी में थे। हिन्दी में भी थे लेकिन इन्होंने स्वीकार नहीं किया। उनके द्वारा तर्क दिया गया कि हिन्दी के शब्दों का उच्चारण लेखन और वर्तनी में कठिनाई है। जैसे आक्सीजन है उसे ओसजन बनाया जाएगा। जबकि आक्सीजन आराम से कह सकते है और ऐसा इसलिए है क्योंकि यह प्रचलन में आ गया। यदि आप प्राणवायु या ओसजन को प्रचलन में लाएंगे तो अनपढ़ भी आसानी से बोल लेंगे। हिन्दी को राष्ट्रभाषा न बनाना एक प्रकार से अंग्रेजी मानसिकता वाले लोगों का षड्यंत्र कहना चाहिए। जो नीति इन राजनेताओं की है वह वैमनस्य पैदा करती है और वह देशहित में नहीं है जबकि राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय एकता पैदा करती है।

अशोक बैरागी:- आत्रेय जी, अपनी साहित्यिक कृतियों के विषय में बताइए ?

आत्रेय जी:- मैंने शुरू में छन्दबद्ध लिखना शुरू किया था। कुछ गीत-गजलें भी लिखी लेकिन मैं अधिक लय नहीं बना पाता था। जैसा मैंने पहले बताया मेरी जिंदगी में लय पहले भी नहीं थी अब भी नहीं हैं। मुझे बचपन से ही संघर्ष करना पड़ा शीघ्र ही मैंने निराला और अज्ञेय के मुक्त छंद में कविताएँ लिखी। शुरू में पाँच कविताओं की एक पुस्तक 'बुझी मशालों का जुलुस' आई। जिसे हरियाणा साहित्य अकादमी ने 'श्रेष्ठ कृति' का सम्मान दिया। अभी एक और कविता संकलन 'नींद में एक घरेलू स्त्री' आया है। 2012 में 'बिन शीशों का चश्मा' लघुकथा संग्रह आया है। दो कहानी संग्रह -'पिलूरे और अन्य कहानियाँ' और 'आग, फूल और पानी।' इसके साथ चार बालकथा संग्रह के साथ एक हरियाणवी भाषा में दोहा संकलन-'सच्चाई कड़वी घणी'। इसके साथ दैनिक ट्रिब्यून के रविवारीय अंक में 'खरी-खोटी' और 'मध्या' में (जनसता जब चण्डीगढ़ से निकलता था) 'म्हारा हरियाणा' कॉलम में प्रतिदिन एक हरियाणवी रचना छपती थी। कुल मिलाकर 16 पुस्तकें अभी तक आई है।

सम्पर्क:- हिन्दी प्राध्यापक, राजकीय कन्या उच्च विद्यालय, हाबड़ी, (कैथल) हरियाणा, मो. 9466549394

संस्मरण

रामकुमार आत्रेय
एक चलता फिरता आलोक स्तंभ

◆ अमृतलाल मदान

रामकुमार आत्रेय को स्मृति नमन करते हुए मैंने उपरोक्त शीर्षक यूँ ही नहीं दे डाला। अपनी दृष्टिहीनता के बावजूद भी गत आठ-नौ वर्षों में उन्होंने अपनी जिजीविषा एंव जीवन का जो अद्भुत परिचय दिया, वह सचमुच चकित करने वाला भी है और प्रेरित करने वाला भी! कोई भी आम आदमी इन हालात में पढ़ना लिखना छोड़ खाट पकड़ लेता अथवा हताशा के गर्त में विलीन हो जाता। लेकिन आत्रेय जी अन्तिम दिन तक साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय रहे। दुर्घटना वाले दिन भी वह हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में घरौंडा (जिला करनाल) में आयोजित एक कार्यक्रम में गये हुए थे। वहाँ से वापसी पर यह दुर्घटना घटी जो अंततः दो सप्ताह बाद उनकी प्राण ज्योति भी बुझा गयी। लेकिन क्या आत्रेय जी का अस्तित्व इससे समाप्त हो गया? नहीं वह अपनी रचनाओं में तथा मित्रों, पाठकों की स्मृतियों में चिरकाल तक बनें रहेंगे।

आत्रेय जी इतने विनम्र, शालीन एवं स्नेहिल थे कि जो भी उनके संपर्क में कभी आया, प्रभावित हुए बिना नही रहा। मेरे मन मस्तिष्क में उनके साथ बिताए कितने ही घनिष्ठ पल स्मृतियों के रूप में कौंध कौंध कर हृदय को व्यथित किये दे रहे हैं।

वे अकसर कैथल की साहित्यिक सभा गोष्ठियों में पधार जाते और अपनी कविताओं-लघुकथाओं से अन्य रचनाकारों को अभीभूत कर जाते। वह अपने लंबे चौड़े ठेठ देहाती व्यक्तित्व से भी प्रभावित करते। वह दूसरों की रचना सुनकर बड़े ध्यान से उन पर सारगर्भित टिप्पणियाँ ऐसी करते कि अगला महसूस भी न करे और दिशा-निर्देश भी मिल जाए। इसप्रकार धीरे धीरे वह प्रादेशिक फिर राष्ट्रीय पटल पर उभरते गये और उनकी उपलब्धियाँ, उन्हें मिले कितने ही सम्मान/पुरस्कार हमारे लिए भी गौरव का विषय होते थे। बधाई देने पर वह बड़ी विनम्रता से उपलब्धियों का श्रेय साहित्य सभा कैथल को ही देते।

कुरुक्षेत्र जाकर भी वह हमारे वार्षिक आयोजनों तथा कुछ अन्य विशिष्ट कार्यक्रमों में छोटे से मौखिक निमंत्रण पर आकर अपनी गरिमामयी उपस्थिति से कार्यक्रम की शोभा बढ़ाते। हम आग्रह करते कि मंच पर आसीन हों, किंतु उन्हें नीचे आम श्रोताओं के बीच बैठना ही पसंद था। बहुत आग्रह करने पर ही संकोच से अपना रचना पाठ करते। दूसरों को सुनना अधिक प्रिय था उन्हें।

एक बार वह मेरे साथ हिसार गये जहां संभवतः हम दोनों ही सम्मानित होने थे। कार्यक्रम की समाप्ति पर मैं उन्हें अपनी बहन के घर साथ ले गया। वहाँ कुछ ही पलों में वह सबके साथ ऐसे घुल मिल गये ज्यों वह भी उसी परिवार के सदस्य हों।

जब वह दिल्ली के AIIMS में आँखों के उपचार हेतु दाखिल थे तो मैं दो बार उनका हाल पूछने गया। एक बार आत्रेय जी ने मुझसे आग्रह किया कि उनकी कुछ तकलीफों के बारे में अंग्रेजी में डॉक्टर से बात करूं क्योंकि डॉक्टर हिंदी नहीं समझता था। डॉक्टर को पहली बार पता चला कि उनका मरीज़ कितना बड़ा लेखक है।

एक बार 2017 में कुरुक्षेत्र में "देस हरियाणा" द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में उनके दर्शन हुए। उस दिन मूसलाधार वर्षा हुआ थी। वर्षा रुकने पर थर्ड गेट तक हम इकट्ठे आए। मैं उनका हाथ पकड़े हुए था कि फिसल न जाएँ किन्तु उन्हें संकोच हो रहा था। गेट पर आकर बोले कि मैं वहीं से कैथल की बस पकड़ लूं, मौसम खराब है, जबकि मैं उन्हें घर तक पहुँचाना चाहता था। उनके ज़िद करने पर मैंने बस पकड़ ली, वह पैदल अपने घर की ओर चल पड़े। बाद में पता चला कि वह फिसल जाने से वह चोटिल भी हुए। वह किसी की सहायता लेने में भी संकोच करते थे और कृपा दृष्टि तो बिल्कुल नहीं स्वीकार करते थे।

मैं उनकी प्रगतिशील, जनपक्षीय सोच का मुरीद (प्रशंसक) था। किंतु वह इस प्रतिबद्धता के चलते भारतीय संस्कृति तथा ग्रामीण परंपराओं के स्वस्थ पक्षों के भी उतने ही बड़े प्रशंसक थे और दृढ़ता से अपनी बात तथा तर्कों से प्रभावित करते। ऐसे में वह मुझे वाकई एक चलते फिरते आलोक स्तंभ ही लगते जो स्वयं अधंकार में रहता है किंतु सर्वत्र प्रकाश फैलाता है।

संपर्क -9466239164

शिक्षा, शिक्षक और बदलावः एक चुनौती, एक अवसर

◆ मुलख सिंह

किसी भी काम की शुरुआत में इंसान को उसके अंजाम का लगभग पता होता है। एक मूर्तिकार छैनी-हथौडा उठाकर पत्थर पर पहला वार तभी करता है जब उसके मस्तिष्क में मूर्ति साकार रूप ले चुकी होती है । बाद में उसी रूप को साकार करने का प्रयास होता है। कच्ची मिट्टी को कुम्हार चाक पर चढ़ाने से पहले ही अपने दिमाग में घड़े, दीपक या किसी और रूप में बना चुका होता है। किसान को बीज बोने से पहले ही पता होता है कि कब पौधे उगेंगे,कब फूल खिलेंगे,कब फल आएगा, कब-कितने खाद-पानी की जरूरत होगी और कितनी उपज हो सकती है। इसी तरह हम हर मानवीय प्रयास के औचित्य को तर्क की कसौटी पर परख सकते हैं। पर जब हम शिक्षा की बात करते हैं तो मामला काफी भिन्न नजर आता है। शिक्षा मानव समाज की सबसे महत्वपूर्ण क्रिया है जो न सिर्फ पूर्वजों के अनुभवों से कमाए ज्ञान को नई पीढ़ी तक पहुँचाने का काम है बल्कि उस ज्ञान को नई जरूरतों और परिस्थितियों के मद्देनजर लगातार संशोधन करते जाने का भी है। इस ज्ञान संचार की प्रक्रिया का मकसद शिक्षार्थी के रूप में ऐसा व्यक्तित्व विकसित करने का होता है जिसका व्यक्तिगत के साथ सामाजिक संदर्भ हो क्योंकि मानव एक सामाजिक प्राणी है और मानव समाज की उन्नति का राज इसका सामाजिक श्रम ही है जो सब सुविधाओं का जनक है।

शिक्षा प्रक्रिया शुरू करने से पहले और इस दौरान अध्यापक के दिमाग में शिक्षार्थी के भविष्य के व्यक्तित्व का स्पष्ट चित्र रहना चाहिए और उसकी अध्यापक के रूप में सभी विद्यालयी और सामाजिक गतिविधियों का मनोरथ इसके आसपास ही रहना चाहिए। पर मानवीय जीवन इतना विविध और संभावनाओं से भरा है कि उसकी तुलना किसी मूर्ति या मिट्टी के घड़े से नहीं की जा सकती। इसलिए जब शिक्षा को परिभाषित करने की बात आती है तो शिक्षा शास्त्रियों और दार्शनिकों में एकमत नहीं रहता। कोई इसे आंतरिक शक्तियों का विकास करना कहता है और कोई इसे सामाजिक व्यवहार ग्रहण करने का साधन। कोई सिर्फ ट्रेनिंग तक सीमित करता है और दूसरा मस्तिष्क के अधिकतम विकास तक। वास्तव में शिक्षा में उपरोक्त सभी पहलू आसानी से समा जाते हैं।

हमारे समाज में शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख समस्या यही आ रही है कि न तो खुद शिक्षकों के बड़े भाग को समाज में अपनी भूमिका के महत्व का बोध है और न ही उन्हें यह साफ है कि उसे बालक को कैसा बनाना है। इससे दिशाहीनता का संकट पैदा होता है। दूसरा पक्ष कि शिक्षा किसके लिए हो ? व्यक्ति, परिवार या समाज के लिए? या यह राज्य, व्यवस्था या बाजार के लिए हो ? इसका स्पष्ट निर्धारण न होने से सब ओर धुंध सी छाई हुई है। न अध्यापक इसे समझ पा रहा है, न अभिभावक। अच्छे जीवन निर्वाह की मूल जरूरत के साथ-साथ व्यक्ति व परिवार का हित निजता और निजी संपत्ति में है,समाज की अभिव्यक्ति संस्थाओं द्वारा होती है और सब संस्थाओं में संवाद लगातार कम होता जा रहा है क्योंकि रीति-रिवाज और संस्थाएँ, परिवार, धर्म या राज्य के साथ जटिल रूप में संबद्ध हैं। राज्य पर बाजार हावी है और अंततः यह व्यवस्था का हितैषी साबित होता है। चूँकि शिक्षा क्षेत्र में राज्य ही वित्त और नीति निर्धारक है इसलिए वह इसके

शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि दिमाग में कई ऐसी सूचनाएं एकत्रित कर ली जाएं जिसका जीवन में कोई इस्तेमाल ही नहीं हो। हमारी शिक्षा जीवन निर्माण, व्यक्ति निर्माण और चरित्र निर्माण पर आधारित होनी चाहिए। ऐसी शिक्षा हासिल करने वाला व्यक्ति उस व्यक्ति से अधिक शिक्षित माना जाना चाहिए जिसने पूरे पुस्तकालय को कण्ठस्थ कर लिया हो। अगर सूचनाएं ही शिक्षित होती तो पुस्तकालय ही संत हो गये हाते।

- स्वामी विवेकानंद

द्वारा व्यवस्था का पोषण करता है और शिक्षा का अंतिम ध्येय असामाजिक, स्वार्थी, मार्केट केन्द्रित व्यक्तित्व और स्थापित सामाजिक मूल्यों की मजबूती ही साबित होता है। यथार्थ में एक सफल शिक्षित व्यक्ति का बिंब इन्हीं केन्द्रों के इर्द गिर्द घूमता है।

एक सामाजिक संस्था के रूप में स्कूल समाज पर कितना प्रभावशाली होगा, यह भी साफ नहीं है। अगर स्कूल के द्वारा समाज को बदलना है (क्योंकि अक्सर शिक्षा के बारे में कहा जाता है कि यह सामाजिक बदलाव का साधन है) तो उसकी प्रभावशीलता इतनी अवश्य होनी चाहिए कि वह उससे ज्यादा सशक्त तरीके से मूल्यों, विचारों और व्यवहार को प्रवाह दे पाए जितना समाज, परिवार,बाजार मीडिया, धर्म और शासन सब मिलकर चला रहे हैं। तो क्या इस बदलाव को लाने के लिए परिवार, समाज, धर्म, बाजार और शासन स्कूल को अपनी हद में दखल देने और बदलने की अनुमति देंगे? यह बदलाव की डगर आसान नहीं है और तब तो और भी मुश्किल जब शिक्षा और स्कूल को, अध्यापक को यह पूरी तरह यह स्पष्ट ही नहीं है कि उसका लक्ष्य- उद्देश्य क्या है या उसे करना क्या है। देश की शिक्षा के काफी बड़े भाग का निजीकरण हो चुका है और शिक्षा के क्षेत्र में निजी निवेश इस बदलाव को, जो कि शिक्षा का मुख्य काम है, को और भी दूर कर देता है क्योंकि उसका मनोरथ पूंजी निवेश से लाभ कमाना है यानी कारोबार है और धार्मिक शिक्षण संस्थाओं का उद्देश्य लाभ कमाना तथा धर्म विशेष का प्रचार करना है। अध्यापक वहां उस स्थिति में भी नहीं है कि वह विद्यार्थियों पर संस्था की लाइन से हटकर कुछ अलग से गतिविधियाँ चला सके क्योंकि वह खुद ही बहुत ज्यादा शोषण और बंधन का शिकार होता है। अंततः निजी शिक्षा राजकीय शिक्षा से भी ज्यादा मौजूदा व्यवस्था की सहायक बनती है।

अतः जहाँ जरूरत शिक्षा के उद्देश्यों को ठीक से परिभाषित करने की है जो शिक्षा दर्शन पर लगातार विमर्श चलाकर की जा सकती है वहीं दूसरी जरूरत शैक्षणिक संस्थानों और शिक्षक की स्वायत्तता बहाली की भी है जिनकी वफादारी राज्य, बाजार और धर्म के प्रति न होकर मानव और समाज के प्रति हो। इस स्वायत्तता की प्राप्ति का रास्ता ज्ञान, संगठन और संघर्ष से होकर जाता है। डगर लंबी जरूर है पर दिशा निर्धारित करना बेहद जरूरी है।

संपर्क - 9416255877

शहीद भगतसिंह की अपने छोटे भाई कुलतार के नाम अन्तिम पत्र

सेंट्रल जेल, लाहौर,
3 मार्च, 1931

अजीज कुलतार,

आज तुम्हारी आँखों में आँसू देखकर बहुत दुख हुआ। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था, तुम्हारे आँसू मुझसे सहन नहीं होते।

बरखुर्दार, हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना और सेहत का ख्याल रखना। हौसला रखना और क्या कहूँ!

उसे यह फ़िक्र है हरदम नया तर्ज़े-ज़फ़ा क्या है,
हमे यह शौक़ है देखें सितम की इन्तहा क्या है।
दहर से क्यों खफ़ा रहें, चर्ख़ का क्यों गिला करें,
सारा जहाँ अदू सही, आओ मुकाबला करें।
कोई दम का मेहमाँ हूँ ऐ अहले-महफ़िल,
चराग़े-सहर हूँ बुझा चाहता हूँ।
हवा में रहेगी मेरे ख्याल की बिजली,
ये मुश्ते-ख़ाक है फानी, रहे रहे न रहे।

अच्छा रुख़सत। खुश रहो अहले-वतन; हम तो सफ़र करते हैं। हिम्मत से रहना। नमस्ते।

तुम्हारा भाई,
भगतसिंह

पुस्तक-परिचय

'मै शिखंडी नहीं'

(रामस्वरूप रिखी का 'मै शिखंडी नहीं' उपन्यास पंजाबी में 2008 में प्रकाशित हुआ था। इसका पंजाबी से हिंदी में अनुवाद प्रख्यात साहित्यकार प्रताप सिंह कतीरा व पूर्व प्राचार्या एवं साहित्यकार उर्मिल मोंगा ने सांझे तौर पर किया है। 'श्री युवक साहित्य सदन' व 'कलम' द्वारा इस पर सिरसा में संगोष्ठी हुई प्रस्तुत है रिपोर्ट)

प्रोफेसर नीतू अरोड़ा, पंजाबी यूनीवर्सिटी कालेज, बटिंडा ने 'मैं शिंखडी नहीं' पुस्तक के हिंदी संस्करण पर चर्चा करते हुए कहा कि साहित्य में किन्नर समाज पर काफी गंभीर लेखन हुआ है लेकिन पंजाबी सहित्यकार रामस्वरूप रिखी ने अपने उपन्यास 'मै शिखंडी नहीं' में किन्नर समाज की व्यथा को जिस कलात्मक ढंग से उकेरा है उससे इस पुस्तक का महत्व बढ़ गया है और आम लोगों को इस पुस्तक के माध्यम से किन्नर समाज को समझने का अवसर मिला हैं।।

कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि के रूप में पजांब विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. कर रही श्रीमती धनंजय चौहान किन्नर ने अपने जीवन के अनुभव सांझा करते हुए बताया कि किन्नर होने के कारण उन्हें जीवन में बहुत प्रताड़नाएं झेलनी पड़ी। उन्होंने कहा कि किन्नर होना शारीरिक से अधिक मानसिक कारण होता है। अपने जीवन के अनुभव सांझा करते हुए कहा कि उन्होंने समाज में अपना स्थान बनाने के लिए सुप्रीम कोर्ट से लेकर समाज के हर वर्ग से कड़ा संघर्ष किया है। इस संघर्ष का परिणाम है कि आज भारत में किन्नर समाज को थर्ड जेंडर के रूप मे मान्यता मिली। अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए बताया कि उनका लालन पालन लड़के के तौर पर शुरू हुआ। 9-10 वर्ष की उम्र में जब उन्हें यह एहसास होने लगा कि वह लड़का न होकर एक लड़की है तो अपनी माता से बात सांझी की। प्रत्युतर में उन्हें तान्त्रिक के माध्यम से शरीर पर गर्म चिमटे दाग कर प्रताड़ित किया गया। परपीड़न का दौर परिवार से शुरू हुआ और फिर स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटी के स्तर पर लगातार चला लेकिन वे हारी नहीं। संघर्ष का जज्बा आज तक कायम है। उनका यह कहना था कि हमें सहानुभूति नहीं समानुभूति चाहिए। सरकार द्वारा दिये जा रहे प्रोत्साहन नौकरी आदि में अभी काफी गुजांइश है। इसके बावजूद जहां थोडा-बहुत मौका मिलता है, वहां समाज के अन्य वर्गो में स्वीकार्यता न होने के चलते उन्हें मौन दुजायगी (भेदभाव) का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर कार्यक्षेत्र के इर्द गिर्द स्थानीय स्तर पर नागरिक उन्हें किराये पर मकान देने में सीधे-सीधे आना कानी तो नहीं करते लेकिन किराया इतना ज्यादा मांगा जाता है कि नौकरी कर पाना कठिन हो जाता है। उन्होनें साहित्यकारों से आह्वान किया कि वे किन्नर समाज को मुख्यधारा में शामिल करने का माहौल बनाने के लिए अपनी कलम चलाएं।

पुस्तक परिचर्चा में डा. बिकरजीत सिंह, हरभगवान चावला व गुरतेज सिंह बराड़ ने भी अपने विचार व्यक्त किए। पुस्तक के लेखक रामस्वरूप रिखी ने इस पुस्तक की रचना प्रक्रिया पर विस्तार से चर्चा की। श्री प्रताप सिंह कतीरा ने बताया कि इस उपन्यास के पात्र काल्पनिक न होकर ऐतिहासिक हैं जिनका केवल बदला हुआ नाम पुस्तक में दिया गया है। श्रीमति उर्मिल मोंगा का कहना था कि पिछले 10 वर्षो में थर्ड जेंडर पर हिंदी साहित्य में बहुत लेखन हुआ है एवं कुछ रचनाएं पुरस्कृत भी हुई हैं। उन्होंने उम्मीद जताई कि 'मैं शिंखडी नहीं' उपन्यास समाज में किन्नर संवेदीकरण के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित होगा। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए निरंजन बोहा ने जीवन में साहित्य के महत्व व विशष रूप से किन्नर समाज पर आधारित साहित्य पर विस्तार से चर्चा की।

सुरजीत सिरडी ने अतिथियों का स्वागत किया तथा युवक साहित्य सदन के प्रधान प्रवीण बागला ने आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम संचालक गुरबख्श मोंगा ने समाज में व्याप्त किन्नर समाज के प्रति दृष्टिकोण पर गहरी चिंता जताई। इस अवसर पर डॉ. जी.डी. चौधरी, प्रो. रूप देवगुण, बिकरजीत सिंह, प्रो. हरभगवान चावला, विनोद कक्कड़, कुलवंत सिंह, श्रीमती छिन्द्र कौर, सुश्री महक भारती, रमेश शास्त्री, रमेश गोयल, सुरेश बरनवाल, महेन्द्र सिंह नागी, एडवोकेट बलवीर कौर, विक्रांत गुप्ता, हरीश सेठी, स्वतंत्र भारती सहित अनेक साहित्य प्रेमी उपस्थित थे।

- गुरबख्श सिंह मोंगा, संपर्क - 9354221054

माता सावित्रीबाई फुले जयंती

◆ **नरेश सैनी**

सावित्रीबाई फुले की जयंती के अवसर पर 2 जनवरी 2020 को गांव बरसत की सैनी चौपाल में सत्यशोधक फाउंडेशन एंव सृजन कला मंच बरसत द्वारा विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर डा.सुभाष चंद्र द्वारा लिखित 'भारत की पहली शिक्षिकाः माता सावित्रीबाई फुले' पुस्तक का विमोचन भी किया गया। प्रस्तुत है रिपोर्ट -

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एवं देस हरियाणा पत्रिका के संपादक डा.सुभाष चंद्र ने कहा कि शिक्षा ही जिंदगी का गेम चेंजर है। शिक्षा से सबकुछ बदल जाता है। भारत की पहली शिक्षिका सावित्री बाई फुले यदि शिक्षा के लिए काम ना करती तो आज भी महिलाएं पढ नहीं पाती और ना ही उनकी जिंदगी में बदलाव आते। डा.सुभाष चंद्र ने कहा कि जिन लोगों ने दूसरों की जिंदगी बदली है वे संघर्षो से निकले हैं। कबीर, रैदास व बुद्ध की लंबी शृंखला है जो विचार, चिंतन, चर्चा व संघर्ष की धारा है। जोतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले व भीमराव अंबेडकर भी इसी कड़ी का हिस्सा हैं। हमें इनके जीवन संघर्षों से प्रेरणा लेकर समाज को शिक्षित करने का कार्य करना चाहिए।

सावित्रीबाई फुले ने सन् 1848 में लडकियों के लिए पहला स्कूल खोला जो उस समय सोचा भी नहीं जा सकता था। सावित्रीबाई के ऊपर कीचड फेंका गया पर वे लडकियों को शिक्षित करती रही। सावित्रीबाई स्कूल में लड़कियों को पढ़ाने जाती तो रूढ़िवादी लोग गोबर-कीचड़ फेंकते थे। उनको वह कहती कि

'मेरे भाइयो, मुझे प्रोत्साहन देने के लिए, आप मुझपर पत्थर नहीं, फूलों की वर्षा कर रहे हैं, तुम्हारी इस करतूत से मुझे यही सबक मिलता है कि मैं निरंतर अपनी बहनों की सेवा में लगी रहूं। ईश्वर तुम्हें सुखी रखे।'

कार्यक्रम का संचालन शिक्षक नरेश सैनी ने किया। शिक्षक चन्द्रवती शर्मा, महिंद्र खेडा, अरुण कैहरबा व साहित्यकार राधेश्याम भारतीय , रंगकर्मी प्रवेश त्यागी व सुशील चौहान, संजय सैनी ने भी संबोधित किया। कार्यक्रम में पंचायत सदस्य नरेश सैनी, अंकित, रिंकू व उनकी टीम,जिले सिंह, प्राध्यापक ललित कुमार, वीरभान, राकेश,किशोर कुमार, परमीत सिंह व स्कूल की लडकियों को सहयोग के लिए सम्मानित किया गया। थियेटर आर्ट ग्रुप द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम भी पेश किया गया। जन युवा शक्ति व भारत विकास परिषद ने मुख्य अतिथि को सम्मानित किया।

इस मौके पर हरियाणा विद्यालय अध्यापक संघ के प्रधान मान सिंह चंदेल, साहित्यकार दयाल जास्ट, पंच रामदास, परमिल,अनिल सैन,भारत विकास परिषद बरसत शाखा संरक्षक डा. संजीव कुमार, कोषाध्यक्ष सुधीर शर्मा, जन युवा शक्ति, टैग व सृजन कला मंच के कलाकार उपस्थित रहे।



सामाजिक क्रांति की अग्रदूत
भारत की पहली महिला शिक्षिका माता सावित्रीबाई फुले

◆ **विकास साल्याण**

दिनांक 03-01-2019 को जोतिबा-सावित्री बाई फुले पुस्तकालय, सैनी समाज भवन, कुरुक्षेत्र में माता सावित्री बाई फुले के जन्मोत्सव पर सत्यशोधक फाउंडेशन की ओर से एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें देस हरियाणा के संपादक और कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग प्रोफेसर डॉ. सुभाषचन्द्र द्वारा लिखित सावित्री बाई फुले के जीवन और चिंतन पर केन्द्रित पुस्तक 'भारत की पहली शिक्षिका माता सावित्रीबाई फुले' पर विचार-गोष्ठी हुई।

सावित्री बाई फुले का जन्म 3 जनवरी 1831 को सतारा, महाराष्ट्र में हुआ था। उनका विवाह 9 वर्ष की उम्र में जोतिबा फुले के साथ हुआ और उस समय तक माता सावित्री बाई फुले अनपढ़ थी। उन्होंने 1848 में पुणे में 6 छात्राओं के साथ भारत के पहले बालिका विद्यालय की स्थापना की एवं प्रथम प्राचार्य के रूप में कार्य किया। उस समय में महिला शिक्षा और दलित जातियों की शिक्षा को लेकर कोई प्रावधान नहीं था बल्कि जब सावित्री बाई फुले ने अपना स्कूल चलाया तो उनके ऊपर लोग पत्थर और कीचड़ फेंकते थे। सावित्रीबाई फुले ने सारा जीवन महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष, विधवाओं के लिए एक केन्द्र की स्थापना, विधवा पुनर्विवाह के लिए प्रोत्साहन, छुआ-छूत मिटाना, महिलाओं की मुक्ति और दलित महिलाओं को शिक्षा दिलाने के लिए निरन्तर संघर्ष किया। एक समाजसेविका के साथ-साथ सावित्री बाई फुले उच्च कोटि की कवियत्री और साहित्यकार थी, उन्होने 'काव्यफुले', 'बावनकशी' तथा सुबोध रत्नाकर का लेखन किया। 1852 में ब्रिटिश सरकार के द्वारा महिला शिक्षा के लिए सम्मानित किया गया।

सावित्री बाई फुले और जोतिबाराव फुले ने सत्यशोधक समाज नाम से एक संस्था चलाई थी और अकाल के समय में 52 रसोई चलाई थी ताकि भूख से लोगों को बचाया जा सके। सावित्री बाई फुले ने उस समय में पुणे में शिशु हत्या प्रतिबंधित गृह खोला और उसमें पैंतीस बच्चों ने जन्म लिया था और उनमें से एक बच्चा यशवंत राव था जिसे जोतिबा-सावित्री फुले ने गोद लिया।

भारत सरकार ने उनके सम्मान में डाक टिकट जारी किया था। प्लेग प्रभावित बच्चों की सेवा के कारण प्लेग से ग्रसित होकर 10 मार्च 1897 को सावित्री बाई फुले का देहांत हो गया था।

इस कार्यक्रम में डॉ.सुभाषचन्द्र ने सावित्री बाई फुले के जीवन और विचारों के बारे में विस्तार से बताया। सावित्री बाई फुले न केवल भारत की पहली महिला शिक्षिका थी बल्कि वह सामाजिक क्रांति की भी अग्रदूत थी। उनके संघर्ष के कारण ही आज हम यहां खड़े होकर बोल रहे है। जोतिबा फुले के विचारों पर प्रकाश डालते हुए उनकी पंक्तियों जिक्र किया

विद्या बिना मति गई
मति बिना नीति गई
नीति बिना गति गई
गति बिना वित्त गया
वित बिना शूद्र गए
इतने अनर्थ किए एक अविद्या ने।

महात्मा जोतिबा फुले ने बताया कि किसान तीन प्रकार के होते है एक वो जो अनाज पैदा करते हैं, दूसरे वो जो भेड़ बकरी मवेशी आदि पालते थे और तीसरे वो जो फल-फूल की खेती करते थे जिन्हें माली कहते थे। उस समय किसानों में चेतना पैदा करते हुए सबको एकत्रित किया और किसानों को लगान न देने को बोला और उस समय में किसानों के साथ मिलकर हड़ताल की।

सावित्रीबाई फुले के विचारों को स्पष्ट करते हुए डॉ.सुभाषचन्द्र ने बताया कि सावित्री बाई फुले का लोगों के लिए आह्वान था कि "जाओ जाकर पढ़ो लिखो, आत्मनिर्भर बनों, काम करो, ज्ञान और धन इकट्ठा करो, ज्ञान के बिना हम जानवर बन जाते है, इसलिए खाली न बैठो, जाकर शिक्षा लो, तुम्हारे पास सीखने का सुनहरा मौका है, इसलिए सीखो"।

विजय विद्यार्थी ने बताया सावित्री बाई फुले आधुनिक भारतीय समाज के अग्रदुत थे। आज महिला



कार्यक्रम के बाद का समूह चित्र

सशक्तिकरण का बड़ा जोर दिया जा रहा है परन्तु सावित्रीबाई फुले के विचारों और संघर्ष के कारण ही भारत जैसे देश में महिलाएं राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री जैसे पदों पर पहुंच गई है।

इस मौके पर, विजय विद्यार्थी, अश्विनी दहिया, नरेंद्र सैनी, सोमनाथ, महावीर दहिया, जीतसिंह शेर, मुरारीलाल सैनी, राजविन्द्र चंदी, रविन्द्र गासो, डा.कृष्ण कुमार, रानी, राजेश कासनिया, सुनील कुमार, पुरुषोतम अपराधी, विरेंद्र, विलास साल्याण, योगेश शर्मा, ब्रजपाल खोकर, कमलेश चौधरी, हरपाल गाफिल, विपुला, सुनीता, जसबीर लाठरों, नरेश सैनी, बीरभान, महेंद्र खेड़ा, अरूण कैहरबा, ओमप्रकाश करूणेश, आदि मौजूद थे।

मैं वहीं हूँगा

◆ रतन सिंह

मैं वहाँ नहीं था
जहाँ मुझे होना चाहिए था
दोनों तरफ से झूल रहे झंडों के
बीच
एक तरफ गुंडों और
दूसरी तरफ पुलिस द्वारा
बरसाए जा रहे डंडों के बीच
एक दूसरे पर लांछन लगा रहे
नारों के बीच
पुलिस थानों के बाहर बैठी
बुद्धिजीवियों की कतारों के बीच
और सरकार की भाषा में
राष्ट्र धर्म के हत्यारों के बीच

मैं शायद कहीं न कहीं डर गया था
वक्त की सरकार से
गुंडों के हथियार से
या पुलिस की मार से
जेल की ऊँची दीवार से
या हर बार
पाकिस्तान भेजने की ललकार से

आम आदमी भ्रम में जी रहा है
दल भक्ति को
राष्ट्र भक्ति समझ कर
जैकारे लगा रहा है
और बच्चों व पत्नी को
बिन भोजन बिन बिस्तर
चावलों की मांड पिला कर
सुला रहा है
मैं वहाँ भी तो नहीं था
अपने जैसों के बीच

नहीं
अब मुझे समझौता छोड़ना होगा
उठना होगा
चलना होगा
जगना होगा
और दीपक की तरह
जलना होगा
हाथ में मशाल लिए
ऊँची आवाज में बोलना होगा
मैंने डरना छोड़ दिया है
और आ गया हूँ
जहाँ मुझे होना चाहिए था
भले ही मुझे सुना दिया जाये
पाकिस्तान जाने का फतवा
या देशद्रोह के लिए दोषी होने का
फरमान
और डाल दिया जाये
किसी काल कोठड़ी में

अब मैं वहीं हूँगा
जहाँ मुझे होना चाहिए था

25-बी, ट्रिब्यून कॉलोनी अम्बाला छावनी

ज्ञान विज्ञान समिति का नौवां राज्य सम्मेलन

◆ **मनीषा हंस**

15 -16 फरवरी 2020 को ज्ञान विज्ञान समिति का नौवां राज्य सम्मेलन सांस्कृतिक सदन, भिवानी में आयोजित हुआ।13 जिलों से 137 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। 31 सदस्यीय कार्यकारिणी का चुनाव किया गया जिसमें 5 महिला सदस्य शामिल हैं। डॉ आर एस दहिया को अध्यक्ष, धर्म सिंह एवं अनीता उपाध्यक्ष, प्रमोद सचिव, सुरेश कुमार एवं नरेश प्रेरणा सह सचिव, सोहन दास कोषाध्यक्ष, सतीश एवं राममेहर सचिव मंडल सदस्य चुने गए।

अखिल भारतीय जन विज्ञान नेटवर्क के भूतपूर्व महासचिव एवं दिल्ली साइंस फ़ोरम के अग्रणी कार्यकर्ता डॉ डी रघुनंदन ने उद्घाटन वक्तव्य दिया। उन्होंने देश के आत्मनिर्भर विकास में विज्ञान और तकनीक की भूमिका की चर्चा की। 1980 के दशक को 'हार का दशक' बताते हुए कहा कि भारतीय अर्थव्यवस्था में इस दौरान विकास की गति धीमी पड़ गई। इस स्थिति से उबरने के लिए निजीकरण और उदारीकरण के रास्ते पर चलने की सोच बना ली गई। यह रास्ता बड़े - बड़े उद्योगों को निजी क्षेत्र में लगाने के लिए हर संभव मदद प्रदान करने का रास्ता था। इस दिशा को अपनाने से संसाधनों के केंद्रीकरण के बढ़ने के साथ-साथ हम तकनीक के लिए पराश्रित होते चले गए। राजनीतिज्ञों की समझ यह थी कि अगर देश में पैसा है तो वस्तुएं अथवा सामान तो बाहर से भी खरीदा जा सकता है। इससे बहुराष्ट्रीय कंपनियों का जाल तो हमारे देश में फैल गया परंतु तकनीक और प्रौद्योगिकी के मामले में भारत पिछड़ता चला गया।

आज पूरा देश अमेरिका, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, जर्मनी आदि देशों में बनने वाले सामान का उपभोक्ता बन गया है। इस दिशा से हमारी युवा शक्ति तकनीक और प्रौद्योगिकी के ज्ञान से वंचित होती गई और बेरोजगारों की विशाल पंक्तियों में खड़ा रहने को मजबूर होती गई। हमारी शिक्षा व्यवस्था मौलिक शोध एवं अनुसंधान के क्षेत्र में पूरी तरह पिछड़ी हुई है। भारत की अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र की अहमियत और विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की जरूरत है। शिक्षा, शोध तथा अनुसंधान में किया जाने वाले खर्च लगातार कम हो रहा है।

भारत ज्ञान विज्ञान समिति के राष्ट्रीय महासचिव डॉ काशीनाथ चटर्जी ने समापन वक्तव्य दिया। उन्होंने कहा कि हरियाणा में युवाओं की भागीदारी, सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा विचारधारात्मक समझ अन्य हिंदीभाषी राज्यों की अपेक्षा बेहतर है।

सचिव द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर बहस करते हुए राष्ट्रवादी, पुनरुत्थानवादी और प्रतिक्रियावादी विचारों के प्रति चिंताएं व्यक्त की। अंधविश्वास, रूढ़िवाद, जातिवाद एवं सांप्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष की व्यापक रणनीति बनाने पर भी बल दिया गया। प्रांत में बढ़ते अपराध, नशा, महिला एवं दलित उत्पीड़न, अल्पसंख्यक मुस्लिम समुदाय के प्रति नफरत, बेरोजगारी, किसानों की आत्महत्याएं, महंगी शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं, बढ़ते धार्मिक कर्मकांड, मजदूरों का शोषण, विकलांगों की समस्याएं आदि मुद्दे उठाए गए। सांस्कृतिक तथा आर्थिक-राजनीतिक पक्षों में भारी विकृतियों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया।

राज्य कार्यकारिणी ने धर्मनिरपेक्षता, वैज्ञानिक मानसिकता, न्याय, समानता एवं स्वतंत्रता के संवैधानिक मूल्यों को समाज में स्थापित करने का संघर्ष तेज करने का संकल्प पेश किया गया। सबकी शिक्षा तथा स्वास्थ्य के लिए संघर्ष की दिशा में एवं सामाजिक न्याय के खिलाफ बनते वातावरण में हस्तक्षेप करने के लिए तथा जनपक्षीय संस्कृति के प्रसार की दिशा में कार्य करने के लिए सबका आह्वान किया गया। आगामी 3 वर्षों में प्रांत के ग्रामीण तथा शहरी इलाकों में 100 पुस्तकालय स्थापित करने तथा 4000 नए सदस्य शामिल करने का लक्ष्य भी रखा गया।

इस दौरान जनवादी संगीतकार और गायक काजल घोष की टीम और जतन नाट्य केंद्र, रोहतक के कलाकारों के सांस्कृतिक प्रस्तुतियां दी। जतन नाट्य केंद्र हरियाणा की टीम द्वारा 'जब दरिया झूम के उठेगा' नाटक का मंचन किया गया। इसमें नागरिकता संशोधन कानून के आमजन पर पड़ने वाले प्रभाव तथा इसके पीछे के मंसूबों को प्रस्तुत किया गया।

हमारा इतिहास और उसका अध्ययन

◆ रविंद्र गासो

(1 दिसम्बर 2019 को डॉ. ओम प्रकाश ग्रेवाल अध्ययन संस्थान, कुरुक्षेत्र द्वारा 'इतिहास को कैसे पढ़ें? शीर्षक से प्रथम परिचर्चा का आयोजन किया गया। डॉ. राम कुमार, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, अम्बाला कैंट इसमें मुख्य वक्ता थे। 'हमारा इतिहास और उसका अध्ययन' विषय पर उन्होंने इतिहास अध्ययन क्यों और कैसे के प्रश्न के साथ-साथ उसको प्रस्तुत करने के भिन्न स्तरों पर विस्तृत और सारगर्भित प्रस्तावना रखी। आमन्त्रित विद्वानों ने गम्भीर बहस में हिस्सा लिया। कार्यक्रम के अध्यक्ष मण्डल में प्रो. टी.आर. कुण्डू, पूर्व प्राचार्य हेमराज शर्मा और डॉ. राम कुमार शामिल थे। प्रस्तुत है रिपोर्ट -

डॉ. राम कुमार ने अपने व्याख्यान के प्रारम्भ में 'इतिहास' की विख्यात परिभाषाओं के बारे में बताते हुए कहा कि 'इतिहास वर्तमान का अतीत के साथ अन्तहीन संवाद है।' 'इतिहास भिन्न अर्थों में एक विज्ञान है' क्योंकि मूल-विज्ञान की तरह इसमें अगर या लेकिन (if and but) नहीं लगता। उन्होंने कहा कि कुछ विद्वान 'इतिहास को विचार का इतिहास' भी कहते हैं। वास्तव में इतिहास अमीबा से इन्सान, इन्सान से सुपर-इन्सान (महामानव) बनने की घटनाओं की कहानी है। इतिहास की सभी घटनाओं के पीछे वैज्ञानिक कारण होते हैं। घटनाओं को जाति-धर्म-संस्कृति के चश्मे से परिभाषित करने की बजाए ऐतिहासिक प्रक्रिया को समझना ज्यादा जरूरी है। प्रत्येक घटना के पीछे/पृष्ठभूमि में कारणों को जानना ही सही-ठोस निष्कर्ष देता है। कारण सार्वभौमिक होते हैं। उदाहरण के लिए 1857 की क्रान्ति का कारण 'चर्बी वाले कारतूस' बताया जाता है। लेकिन यह तात्कालिक कारण था। इसकी पृष्ठभूमि में ईस्ट इण्डिया कम्पनी, प्लासी की लड़ाई और उससे भी आगे मैग्नाकार्टा आदि अनेक कारण रहे।

इतिहास लेखन में इतिहासकार महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इतिहास की व्याख्या उनके दिमाग की उपज है। इतिहास-लेखक या इतिहास को देखने वाले आमजन के संस्कार (उसकी जाति, धर्म, संस्कृति, सभ्यता) भी काम करते हैं। उदाहरण के लिए श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र में चक्रधारी हैं, वृन्दावन में वो बालगोपाल हैं, द्वारका में वो एक राजा हैं। जैसे राम परम्परागत रूप में एक संन्यासी विख्यात हैं। लेकिन 6 दिसम्बर के बाद वो एक 'रणवीर योद्धा' के रूप में प्रस्तुत किए गये। बाबर इतिहास में एक विजेता है, हमारे लिए खलनायक है, उज्बेकिस्तान (समरकंद) में बाबर को एक कवि के रूप में पढ़ाया जाता है। यह 'व्याख्या' का मसला है। व्याख्या उतनी ही सही होगी जितनी वह वस्तुनिष्ठ होगी।

कई बार कुछ नए तथ्यों की खोज भी इतिहास की व्याख्या को प्रभावित करती है।

हम इतिहास पढ़ते क्यों हैं?, इतिहास की जरूरत क्या है? इसके साथ जुड़ा दूसरा प्रश्न है कि इसे पढ़ा-देखा कैसे जाये? इतिहास को बेहतर ढंग से समझने के लिए पाठक को चाहिए कि वह सर्वप्रथम देखे कि लेखक कौन है? किस तरह की इतिहासकारी उसने की है? उसके द्वारा किन स्रोतों को आधार बनाया गया है? प्रस्तुत तथ्य कैसे हैं? और किस तरह की व्याख्या की गई है? उदाहरण के लिए 'फ्रांस की क्रान्ति' को जानने के लिए उस समय के साहित्य को पढ़ना जरूरी है। भारतीय इतिहास में जैसे कल्हण की 'राजतरंगिणी' पहला इतिहास-ग्रन्थ है। जैसे भारतीय इतिहासकारी ब्रिटिश के आने के बाद शुरू होती है।

इतिहासकार के बाद सवाल पाठक का आता है कि पाठक कौन है? उसकी समझ कितनी पुख्ता है। जैसे स्कूलों में चरित्रों/नायकों के माध्यम से इतिहास पढ़ाया जाता है और अकादमिक क्षेत्र में वैज्ञानिक आधारों, तथ्यों पर आधारित शोध द्वारा इतिहास पढ़ा जाता है। तीसरा आम जन हैं। आम जन के दृष्टिकोण से इतिहास लिखा ही नहीं गया।

इतिहास लेखन पर वर्तमान संकट को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा कि आज बहुत बड़े डिबेट सुनियोजित ढंग से खड़े किए जा रहे हैं जैसे राम मन्दिर, मुसलमान, औरंगजेब आदि। सोशल मीडिया पर यह डिबेट त्वरित भाववादी टिप्पणियों से भरे हैं। वैज्ञानिक तथ्यपरकता व्याख्या न के बराबर है।

प्रो. अतुल यादव, इतिहास विभाग, राजकीय कॉलेज, अम्बाला ने कहा कि हमें इतिहास के संवाद में युवाओं को जोड़ना चाहिए। इतिहास को एक विषय के रूप में पढ़ने की स्थिति से आगे चलने की जरूरत है।

राजकीय कॉलेज इंद्री (करनाल) के हिन्दी के वरिष्ठ शिक्षक प्रो. कृष्ण कुमार ने कहा कि इतिहास पढ़ते हुए हमें तथ्य से सत्य तक की यात्रा करनी होती है, इतिहास से इतिहास-बोध तक । हम वर्तमान की समस्याओं को समझने के लिए परम्परा को जानना चाहते हैं। वर्तमान से ही भविष्य बनता है। उन्होंने केदार नाथ सिंह की कविता उद्धृत करते हुए कहा कि -

'चट्टान को तोड़ो, वह सुन्दर होने लगेगी।

उसे और तोड़ो वह और सुन्दर होने लगेगी।

डॉ. रविन्द्र गासो ने कहा कि इतिहास पढ़ने और लिखने में दो जगह समस्या पैदा करती हैं - एक इतिहास में मिथकों की मिलावट। मिथक या मिथिहास इतिहास नहीं है और उसे पढ़ने, डि-कोड करने/व्याख्या करने की पद्धति ही भिन्न है। दूसरी समस्यामूलक जगह है 'पहचान' की। 'जाति-धर्म-नस्ल-संस्कृति की पहचान' की दृष्टि से इतिहास लिखना-पढ़ना एक बड़ी समस्या है।

'देस हरियाणा' के सम्पादक और हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में प्रोफेसर डॉ.सुभाष चन्द्र ने कहा कि भारत में इतिहास लेखन की समृद्ध परंपरा है। आज इतिहास पर सबसे ज्यादा राजनीति हो रही है। साम्प्रदायिक-फासीवादी शक्तियाँ अपने झूठ को सौ बार बोलकर सच बनाने की कोशिश कर रही हैं। अगर सच को बचाना है तो उसे सौ बार बोलना होगा। गोगा पीर जैसे स्थानीय नायकों का इतिहास लिखना चाहिए।

प्रो. अमित चौधरी, इतिहास विभाग, राजकीय कॉलेज, करनाल ने कहा कि सूचना और ज्ञान में अन्तर होता है और ज्ञान ही इतिहास है। उन्होंने कहा कि इतिहास अध्ययन में हम अतीत से जितना दूर जायेंगे, उतना जुड़ेंगे। प्राचीन इतिहास एक है। जितना वर्तमान में आयेंगे उतना दो तस्वीरें बननी शुरू हो जायेंगी - यह मेरा संसार, वह दूसरों का। स्वयं को जायज, सर्वोच्च ठहराने की जिद्द।

एम.एन. कॉलेज शाहाबाद मारकण्डा के इतिहास विभाग के वरिष्ठ प्रोफेसर संजय शर्मा ने कहा कि क्या? क्यों? और कैसे? इन तीन बिन्दुओं पर इतिहास टिका है। आज सूचना को इतिहास की तरह पेश किया जा रहा है। सूचना मात्र इतिहास नहीं, बल्कि इतिहास विवेक (wisdom) है। सूचना को निहित उद्देश्यों के लिए तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है, परंतु wisdom को मैनीपुलट नहीं किया जा सकता।

डी.ए.वी. कॉलेज, साढौरा के इतिहास-विभाग के प्रोफेसर गुरमेज सिंह ने कहा कि हमें इतिहास लेखन के कार्य पर लगना होगा। जब हम लिखेंगे तो अनिवार्य रूप से हमें इतिहास पढ़ना भी पड़ेगा। सरकारें तो चाहती हैं कि हम इतिहास न पढ़ें।

महर्षि दयानन्द यूनिवर्सिटी, रोहतक के शोधार्थी इन्द्रजीत ने कहा कि जनता में प्रचलित इतिहास में सभी कुछ अच्छा नहीं है। यह जरूरी नहीं कि इतिहास-लेखक इतिहास का ही विद्यार्थी हो। उन्होंने प्रसिद्ध इतिहासकार डी.डी. कोसाम्बी का उदाहरण दिया जो मूलतः विज्ञान के छात्र थे। शिक्षक और सोशल मीडिया एक्टिविस्ट विकास शर्मा ने महत्त्वपूर्ण सवाल उठाते हुए कहा कि इतिहास को अंतरअनुशासनात्मक ढंग से पढ़ने की जरूरत है। डी.ए.वी. कॉलेज नन्योला के पूर्व प्राचार्य हेमराज शर्मा ने कहा कि इतिहास एक संवेदनशील विषय है, इसकी प्रस्तुति रसदायक होनी चाहिए। बौद्धिक-विमर्शों में भिन्न-भिन्न स्कूल-ऑफ थॉट का होना बहुत स्वस्थ परम्परा है।

अध्यक्षीय टिप्पणी करते हुए प्रो. टी.आर कुण्डू ने कहा कि किसी भी विषय के तथ्य और तर्क दो ही आधार होते हैं। कई बार शासक इतिहास की सृजना नहीं कर पाते तो वे अपने स्वयं के झूठे इतिहासकार बनाते हैं। इतिहास अतीत की राजनीति है और वर्तमान राजनीति कल का इतिहास है। वर्तमान चश्मे से अतीत को देखना गलत है। इस अवसर पर ओमप्रकाश करुणेश, कवि-कलाकार हरपाल, प्रो. सरिता चौधरी, अश्विनी दहिया, महावीर दहिया, एडवोकेट राजविन्द्र सिंह चन्दी, कवि कपिल भारद्वाज आदि उपस्थित थे।

धर्म राष्ट्रीयता की कसौटी नहीं है, बल्कि मनुष्य और उसके ईश्वर के बीच का मामला है। राष्ट्रीयता के अर्थ में वे सबसे पहले भारतीय हैं और सबसे अंत में भारतीय हैं वे चाहे किसी भी धर्म का अनुकरण करते हों।

- महात्मा गांधी

मैं हिन्दू, मेरा देश हिंदुस्तान पर यह हिन्दू राष्ट्र न बने

◆ **राजेंद्र चौधरी**

मैं जन्मना हिन्दू हूँ। न मैंने धर्म बदला है और न धर्म बदलने का इरादा है। बचपन में मैं नियमित पूजा पाठ भी करता था। होस्टल में जा कर भी बिना गीता पाठ किये भोजन नहीं किया। धीरे धीरे यह पूजा पाठ बंद हो गया। सब से पहले मुझे दिक्कत हुई छुआ छूत से। मेरे परिवार में, ख़ास तौर से मेरी विशुद्ध गृहणी मां बहुत छुआछूत मानती थी पर स्कूल की किताबों में जात पात विरोधी पाठ थे। सब देशवासी मेरे भाई बहन हैं यह पढाया जाता था। स्कूल में तर्क शीलता और विवेक को बढ़ावा दिया जाता था। मेरे स्कूल में समझने पर जोर था, रटने पर नहीं। इस लिये धीरे धीरे मेरे मन में यह सवाल उठने लगा कि किताब सही है या मेरी मां? यह सवाल उठा कि पृथ्वी के बारे में प्रस्ताव लिखते हुए मैं क्या लिखूं; कि यह सूर्य के चारों और घूमती है या ये लिखूं कि इसे शेषनाग ने अपने फन पर उठाया हुआ है? विज्ञान की परीक्षा में मानव का विकास बन्दर से हुआ है यह लिखूं या लिखूं कि इसे ब्रह्मा ने बनाया है और अलग अलग वर्ण को अलग अलग अंग से बनाया है? स्कूल ने मुझे विवेक एवं तर्क की कसोटी को मापदंड बनाना सीखाने के साथ सत्य का पाठ भी सीखाया। इस लिए मेरे लिए यह मुश्किल हो गया कि मैं अपने जीवन में कुछ और करूं या मानूं पर परीक्षा में कुछ और लिखूं। पास होना भी ज़रूरी था इस लिए किसी भी घटना की चर्चा करते हुए उस का कारण प्रभु इच्छा भी नहीं लिख सकता था। यह सवाल भी था कि भगत सिंह की बात मान कर नास्तिक बनूँ या धार्मिक बन कर जीवन की हर घटना को हरी इच्छा मान कर स्वीकार करूं। बाद में एक अर्थशास्त्री के रूप में यह सवाल भी उठा कि देश की बेरोज़गारी के लिए देश की आर्थिक नीतियों को बदलने का प्रयास करना चाहिए या मंदिर में जा कर बेरोज़गारी दूर करने की प्रार्थना करनी चाहिए? समय के साथ भगवान, पूजा पाठ में मेरा विश्वास ख़त्म हो गया। अब खतरा यह है कि मुझे हिन्दू राष्ट्र में समान नागरिक के तौर पर रहने का अधिकार मिलेगा या नहीं। क्योंकि हूँ तो मैं केवल नाममात्र का हिन्दू वास्तव में तो मैं नास्तिक हूँ। अगर भारत अक्षरक्षः, पूरी तरह से, वास्तव में हिन्दू राष्ट्र बन जाता है तो मेरे जैसे नास्तिकों को तो दोयम दर्जे का नागरिक बन कर रहना होगा। जब समान नागरिक बन कर, बल्कि तथाकथित उच्च जातीय उच्च दर्जे तक शिक्षित एवं अंग्रेजी बोलने में सक्षम पुरुष होने के कारण वास्तव में आम नागरिक, और महिलाओं से कहीं अधिक प्रभावशाली होने के बावज़ूद, जीना दूभर हो गया है, अकेले थाने में जाने से डर लगता है (शायद ही कोई रपट लिखवाने अकेले थाने में जाता हो), तो हिन्दू राष्ट्र में दोयम दर्जे का नागरिक बनने पर मेरा क्या हाल होगा, यह सोच कर ही डर लगता है। फिर भी मेरे पास एक रास्ता तो होगा अपनी नास्तिकता छुपा कर बचने की कोशिश कर सकता हूँ, संशय होने के बावज़ूद चुपचाप यह सुन सकता हूँ कि भगवान राम का जन्म यहीं, इसी स्थान पर हुआ था (वैसे भी आज कोई कहाँ कोई सवाल करता है; कक्षा तक में शांति बना कर रखनी होती है और याद करना होता है) पर सिक्खों का क्या बनेगा? भले ही संघ उन्हें हिन्दू परिवार में शामिल करने का आश्वासन दे पर बहुत से सिक्ख तो ऐसा नहीं मानते। सिक्ख क्या कई हिन्दू भी सिक्खों को हिन्दू नहीं मानते वरना 1984 और उस के पहले और बाद के सिक्ख विरोधी दंगे तो नहीं होने चाहियें थे। मेरे दो (जन्मना) सिक्ख दोस्त सीधे सीधे 1984 की इस हिंसा का शिकार हुए। एक का तो सड़क से उठाया कुछ समान अब भी मेरे पास पड़ा है क्योंकि वो बहुत ज़रूरी भी नहीं था और उस को वापिस करके उस के जख्म कुरेदने का काम करने से मैं आज तक बचता रहा हूँ पर जब भी मैं अपने पास पड़े उस सामान को देखता हूँ तो दिल्ली की सड़कों का वो मंज़र मुझे याद हो आता है। और दूसरे दोस्त ने हमेशा के लिए अपने बाल कटा लिए और फिर देश भी छोड़ दिया। सवाल यह उठता है कि अगर हिन्दुस्तान हिन्दू राष्ट्र बन गया तो क्या सब सिक्खों को देश छोड़ना पडेगा या बाल कटाने पड़ेंगे या पंजाब हिन्दुस्तान से अलग हो जाएगा या उन्हें दोयम दर्ज़े का नागरिक बन कर रहना पड़ेगा?

इसी प्रकार जैन और बौद्धों का क्या होगा? जैन और बौद्धों की बात छोड़ों, वैष्णव हिन्दू मंदिरों के गढ़ मथुरा में जाकर मुझे यकायक याद आया कि स्वामी दयानंद सरस्वती की शिक्षा भी मथुरा में ही हुई थी। उनके गुरु का आश्रम यहीं था। मेरा मन हुआ कि उस आश्रम को जा कर देखा जाए तो सनातनी मथुरा में किसी को उस का पता ही नहीं था। किसी तथाकथिक 'अर्बन नक्सल' एवं नास्तिक को फ़ोन कर के उस आश्रम का पता ठिकाना मालूम करना पड़ा। हरियाणा में रहते हुए आर्यसमाज जितना बड़ा मालूम पड़ता है उतनी ही निराशा मथुरा के उस आश्रम में जाकर हुई क्योंकि आर्यसमाज का शायद की कोई चिन्ह वहाँ था। तो यह भी सवाल उठता है कि आर्य समाजी भी हिन्दू राष्ट्र में सुरक्षित होंगे या नहीं या उन्हें भी दोयम दर्जे का नागरिक बन कर रहना होगा?

एक बार केरल के एक गाँव में शाम को पटाखे चलने लगे। दिवाली गुज़रे बहुत दिन हो चुके थे। पूछताछ करने पर पता चला कि यहाँ मंदिर में हर शाम पटाखे चलाये जाते हैं। फिर पता चला कि हरियाणा में कुछ इलाकों में हिन्दुओं को जलाया नहीं दफनाया जाता है। अब जिनको दफनाया जाता है उन्हें हिन्दू राष्ट्र में समान नागरिक माना जाएगा या नहीं?

हिन्दू राष्ट्र बनने पर तो संविधान में हिन्दू को परिभाषित करना पड़ेगा और कुरान, बाइबिल, गुरु ग्रन्थ साहिब जैसी एक पुस्तक भी अपनानी पड़ेगी या बनानी पड़ेगी।

एक बात और। हमारे आस पास के किस देश में एक धर्म का वर्चस्व होने के बावज़ूद वहाँ शान्ति और समृद्धि है? फिर चाहे वह बौध धर्म के वर्चस्व वाला श्रीलंका या मयन्मार हो या हिन्दू राष्ट्र नेपाल हो। अगर एक धर्म का वर्चस्व होने के बावज़ूद, अगर शान्ति, सम्पन्नता और सुरक्षा नहीं मिलती तो फिर हिन्दू राष्ट्र बनने पर क्यों जोर लगाएं। क्यों न सीधे सीधे सब के लिए रोज़गार, न्याय, शांति, शिक्षा और स्वास्थ्य सुरक्षा पर अपनी ऊर्जा लगाएं? क्यों न देश के संसाधन इस बात पर लगें कि हर महिला, हर समय, घर के अन्दर और बाहर, दोनों जगह सुरक्षित महसूस करे। हर बच्चा अपने भविष्य के प्रति आश्वस्त हो।

अगर एक धर्म के वर्चस्व वाले हमारे किसी पड़ोसी राष्ट्र में ये सब समस्याएं हल हो गई हैं, फिर तो भारत के हिन्दुओं को हिन्दू राष्ट्र के सपने देखने चाहिए वरना तो इसके लिए तैयार रहना चाहिए कि हिन्दू राष्ट्र बनने पर ये समस्याएं और भी बढ़ जायेंगी। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि देश की लगभग 20 प्रतिशत आबादी गैर-हिन्दू है। इसका अर्थ हिन्दू राष्ट्र बन जाने पर हर 5 में से एक व्यक्ति को अलगाव महसूस होगा। और जब हर 5 लोगों में से 1 व्यक्ति या हर 5 गांवों में से एक गाँव को अलगाव महसूस होगा, हर 5 जिलों में से एक जिले को अलगाव महसूस होगा, तो कितने बड़े पैमाने पर अंदरूनी फूट होगी। हमारी इतिहास की किताबें आम तौर पर कहती हैं कि आंतरिक फूट के कारण विदेशी आक्रान्ता भारत में विजयी हुए थे। हिन्दुस्तान का हिन्दू राष्ट्र बनाना इस फूट को बढ़ाएगा या घटाएगा?

अगर हिन्दू होना ही हमारे लिए सब से महत्वपूर्ण है, हमारी बुनियादी पहचान है तो उत्तराखंड उत्तर प्रदेश से और तेलंगाना आंध्रप्रदेश से क्यों अलग हुआ? क्यों महाराष्ट्र में अलग विदर्भ राज्य की मांग लगातार उठती रहती है? क्यों हरियाणा पंजाब से अलग हुआ? क्यों हर राज्य में अलग जिले की मांग उठती रहती है? क्यों प्रादेशिक भेदभाव की बात उठती है? क्यों जातीय हिंसा और झगड़े होते हैं? क्यों आसाम के लोगों को बांग्ला भाषी लोगों का बढ़ता वर्चस्व, फिर चाहे वे हिन्दू हों या न हो, भारतीय भी हों या न हो, चिंता का विषय है? क्यों हर राज्य में स्थानीय लोगों को ही दाखिला और रोज़गार देने की मांग उठती रही है और उठ रही है। क्यों नागरिकता कानून में बदलाव का आसाम और पूर्वोतर भारत में इतने बड़े पैमाने पर विरोध हो रहा है। ऐसा इसलिए है कि उन के लिए मुद्दा धर्म का न हो कर भाषा और संस्कृति का है। आज जब भारत के लोग इंग्लैंड, अमरीका, कनाडा में जा कर जो मंत्री बन रहे हैं, और आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में बनने की आशा कर रहे हैं, एवं इस पर हम गौरवान्वित भी महसूस करते हैं, अगर वो देश भी एक धर्म के वर्चस्व वाले देश बन गए तो इन देशों में रहने वाले हमारे हिन्दू बहन भाइयों का क्या होगा?

असली लड़ाई सब के लिए शांति, सम्मान, आर्थिक सुरक्षा और न्याय की है। रोजगार की है, सरकारी नौकरी की नहीं अपितु गरिमामय एवं सुरक्षित रोज़गार एवं व्यवसाय की है। और शायद अब तो सब से बड़ी लड़ाई साफ़ हवा और पानी की है। पर हिन्दू राष्ट्र जैसे मुद्दे हमें इन मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित ही नहीं करने देते। हिन्दुस्तान हमारे लिए, हिन्दुओं के लिए काफी है, इसे हिन्दूस्थान बनाने की आवश्यकता नहीं है।

संपर्क - 9416182061

लोक आख्यान

जलाली, लुहार की बेटी

(कैप्टन आर सी टेम्पल द्वारा संकलित लोक आख्यान तीन खंडों में 1884, 1885 व 1900 ई. में प्रकाशित हुए। इनमें हरियाणा से संबंधित कई आख्यान हैं, जिनमें से 5 (स्वांग गूगे राजपूत बागड़ देस का, स्वांग राजा गोपीचंद, स्वांग राजा नल का, राग राजा ढोल बेटा राजा नल का तथा सरवण और फरीजन) पिछले अंक में प्रकाशित किए थे। इस अंक में 'जलाली, लुहार की बेटी' प्रस्तुत कर रहे हैं, जो 'द लीजेंडस ऑफ पंजाब' पुस्तक खंड - 2 में संकलित है। इसी तरह अगले अंकों में भी इन लोक आख्यानों को अपने पाठकों के लिए हम प्रस्तुत करते रहेंगे। ये आख्यान अभी तक देवनागरी में उपलब्ध नहीं थे। आशा है कि इससे हरियाणवी भाषा व संस्कृति पर बहस शुरु होगी - सं.)

(अंबाला जिले के गायक ने जिस रूप में गया)

(यह कथा पूरे देश में लोकप्रिय है और सिर्फ गायकों को नहीं, बल्कि घरेलू औरतों को भी यह ज्ञात है। यद्यपि इसके बारे में मुझे कुछ भी संतोषजनक नहीं मिला।)

(जलाली की कहानी यह है कि वह एक लोहार की बेटी थी, (लोहारी), जिसे एक स्थानीय राजा ने सोख लिया था। जिसे रोडे शाह या बोडे ने अलग कर दिया, उसके घर को पटना के रूप में विभिन्न प्रकार से दिया गया (एक छाप पुस्तक शीर्षक किस्सा रोड़े शाह जलाली), और कहीं करनाल या मुल्तान जिलों में। बोडे शाह के बारे में जितनी मैं जानकारी एकत्रित कर सकने में सक्षम हुआ हूं उसके लाहौर के नजदीक अमृतसर रोड पर एक कब्र या दरगाह है। अन्यथा उन्हें 'अब्दुल-कादिर जिलानी' के अनुयायी के रूप में मुल्तान से आया माना जाता है इस स्थिति में हमें उसे 15वीं शताब्दी में रख सकते हैं। सभी आख्यान इस पर सहमत हैं कि वह मक्का से आया था, जैसा कि यह आख्यान भी कहता है कि लोहारी बगदाद से थी, लेकिन यह सरासर बकवास होनी चाहिए। जैसा कि नाम है, रोडे शाह, (Shaven Mendlcant) पूरी तरह से भारतीय है, जैसे उसकी (जलाली) 'जाति'। भारत की अमूल्य दूब (घास) को हमेशा के लिए हरी और मीठी करना बोडे शाह का महान करतब और चमत्कार माना जाता है।)

(जिस भाषा में किंवदंती यहां दी गई है वह अच्छी तरह से परीक्षणीय है) - आर सी टेम्पल

लोहारी जलाली की साख

लोहारी जलाली शहर बगदाद में पैदा हुई, और रोडे शाह फकीर मक्का में पैदा हुआ। रोडे शाह फकीर को लोहारी जलाली ख्वाब में नजर पड़ी, और रोडे शाह फकीर को उसी वक्त इश्क पैदा हो गया। और लोहारी को रोडे शाह फकीर ख्वाब में शहर बगदाद में नजर पड़ा।

इतनी देख रोडे शाह फकीर ने दुलदुल ली संवार ;
हाथ कुजाह, गळ तसबीह, बघलों बीच कुरान।
बिस्मिलाह करके दुलदुल छेड़ दी : रस्ते में मिले चारों यार।
चारों यार बोलदे रोडे शाह से, करें सवाल :
"कौणसे मुल्क से आवणा ? कौणसी विलायत को जाण ?"
" मक्का शरीफ से आवणा ; शहर बगदाद को जाण।"
इतने कहके चल पड़े, और रस्ते में हो गई रैन।
रैन को देखके रोडे शाह हुए बे-चैन।
रोडे शाह फकीर ने जंगळ की घास उकठी करी ; घासों से करें सवाल :
" सवा हाथी देओ बिस्तरा, फकर नूं पढ़णी नमाज।"
इतनी सुणकर घास बोलदी फकर से करें सवाल :
"हमारे पर बिस्तरा नहीं, देखो कोई ठौर।"
इतनी सुण रोडे शाह फकीर दिल हुए उदास।
गंदी घास बोलदी, रोडे शाह से करें जवाब :
" ढाई भार, हसरत, बाढ लो, बिस्तर लो जमाए।"
इतनी सुण रोडे शाह फकीर ने घासों से करें सवाल :
" और घास सब जळ जाएंगे, तेरे से मारेगी खुशबू।
गावां चुगें, दूध देंगे, और दुनिया में रहेगा तेरा नाम।
ऐसा नन्हा हो चालीए बंदे, जैसी नन्ही दूब।

और घास सब जळ जाएगी, हरी रहेगी दूब।"
इतनी कहके रोडे शाह फकीर चल पड़ा, आया मल्लाह के पास :
"लड़के रे मल्लाह के, सुण मेरी अरदास।
इक बे आई अल्लाह नाम की, फकर को लखा दे पार। "
इतनी सुण मल्लाह बोलदा ; "सुण, फकर, मेरी बात ;
हुक्म हुआ लोहारी जलाली का, तुम्हें कैसे लखावे पार ?"
इतनी सुण फकर बोलदा ; "सुण, मल्लाह, मेरी बात :
औरों से लेंदा पैशा, फकर से ले ले दो चार :
इक बे आई अल्लाह नाम की फकर को लखा दे पार।"
"जे तुम फकर ओलिया आपो से लंघ जाओ पार।"
इतनी सुण रोडे शाह फकीर के तन में लग गई आग।
किश्ती की बे आई बणाए, सोटी की बली लगाओ :
बिस्मिल्लाह करके फकर बैठ गए, लंघ गए परले पार।
अपणे दिल में मल्लाह सोचता, "फकर नहीं, कोई दरवेश।"
जाकर कदम दरवेश के फकड़ लीए, शाहजी से करें सवाल :
"मैं ना जाणों तुम ऐसे ओलिया, चश्मों पर लेंदा बिठाए।
कोई ऐसी दोआ मांगीयो मेरा बेड़ा कर जाईयो पार।"
इतनी सुण रोडे शाह बोलदा, मल्लाह से करें जवाब :
"बहुता खटीयो, बहुता कमाईयो, थारे खटे में बरकत हो लीयो नाह।"
इतनी सुण रोडे शाह फकीर की मल्लाह हुआ उदास।
इतनी कह रोडे शाह चाल पड़े शहर बगदाद को जाण :
लोहारी जलाली के बार में देता 'अलख' जगाए।
इतनी सुण लोहारी जलाली ने कमाली बहिन लीए बोलदी :
"जाईए, बहिन लाड़ली, बिच्छा दे पाओ।"
लेकर भिच्छा चल पड़ी, आई फकर के पास :
"ओ फकर, भिच्छा लो, खड़ी कमाली तेरे पास।"
इतनी सुण रोडे शाह फकीर ने कमाली से करें जवाब :
"हम ने भिच्छा क्या करणी ? जलाली का लें दीदार।"
इतनी सुण कमाली चल पड़ी, आई जलाली के पास :
"काळा काळा भूंड सा, पर रहा साडे खियाल।
मोतीयों की भिच्छा नहीं लेंदा लेंगे तेरा दीदार।"
इतनी सुण रोडे शाह फकीर लोहारी से करें जवाब :
"काळा काळा किस को बताउती ? काळा है बुरी बलाओ।
काळा सिर के बाळ हैं : येह मरदों का सिंगार।
काळी आंखों की पूतली, मोहे कुल संसार।
काळा पच्छम की बादळी, बरसे कुल संसार।
इतने काळों को मारके, फिर फकर से करीयो जवाब।"
इतनी सुण जलाली कमाली से करे जवाब :

"जिस फकर से मैं डरूं, वही आया साडे पास।"
हाथ जोड़ जलाली बोलदी,"सुण, कमाली बहिन, मेरी बात:
बाबल मेरे से कह दे, 'येह फकर नहीं, कोई बदमाश'।"
इतनी सुणकर चल पड़ी, आई बाबल दे पास :
हाथ जोड़ कह रही, "सुण, बाबल, मेरी बात ;
फकर नहीं कोई मसखरा, मांगे तेरी बेटी का दीदार।"
इतनी सुणकर चल पड़ा, आया बेटी के पास :
"हुक्म, बेटी, दे दे, जो चाहे, सो होवे।"
"इस फकर को निकाल दो, धक्के दो दो चार।"
"जाईए, फकर, हट जा : येह है लोहारी का फरमान।"
इतनी सुण बोलदा फकर, करे सवाल :
"तुरतों मक्का से आ गीया, देखण तेरा दीदार।"
इतनी सुणकर गुस्सा हो गई वो चंचल सी नार।
घर के जल्लाद लिए बुलवाओ, मंगवाए अपणे पास :
"इस फकर को पकड़ लो, मशकान देओ आज।
या तू कह दो फकर को 'हट जा', और नहीं, टुकड़े कर दो चार।"
इतनी सुण फकर बोलदा, और लोहारी से करे जवाब :
"इन बातों से ना डरूं ; लूंगा तेरा दीदार।"
इतनी सुण लोहारी जलाली ने हुक्म दीया, चढाओ :
"जल्दी मसकन बांध लो, टुकड़े कर दो चार।
इतनी टुकड़े बणाए दो, और कंबल के बांधो पिण्ड।"
इतनी सुण जल्लाद ने बहा दीए तलवार,
फकर भी ना बोलदा, हुक्म हुआ दरगाह।
चार चार उंगल के टुकड़े कर दिए, लीए समुंदर को जाण।
जाकर समुंदर गेर दीया और मच्छलीयों ने बाढ लिया मास।
"सारा मास तुम खाए लो, दो नैन देईओ छोड़।
मुझ को पिया मिलण की आस।" हुक्म हुआ दरगाह से ख़्वाजा खिजर दरमियान :
"इस फकर की देह सम्पूर्ण कर दो : इस को पिया मिलण की आस।"
हुक्म हुआ दरगाह से सम्पूर्ण हो गई देह।
जलादों से पहले चल पड़ा, आया लोहारी के बार :
"लोहारी जलाली, अल्लाह की पियारी, फकर नूं देईयो दीदार।"
बोली जलाली, "क्या कहे ? सुण, कमाली बात।
कैसा फकर बोलदा इस डयोढी दरम्यान ?"
देख कमाली रो पड़ी, आई बहिन के पास :
"बहिन, फकर नहीं, कोई ओलिया, और फकर बुरी बुलाय।
जिस फकर नूं तू मारीया, ओह फकर खड़ा तेरे दरबार।"
इतनी सुण गुस्से हुई और नैन लीए भरतार :

"ऐ फकर, तू ना हटा, तेरे टुकड़े कर दूंगी चार।"
"इन बातों से ना डरूं, लूंगा तेरा दीदार।"
"सुणकर आ गया, जलाली, तेरा बाप।"
"बाप, तैं इस फकर को मार दो ; नहीं, मरूं कटारा खाए।"
इतनी सुणकर बोलदा झट उस का बाप :
"जो कही सो करूं इस घड़ी वोह बात।"
लोहे का तंदूर गड़वा दे, और लकड़ों की कर दी आंच।
बांध मशकान, गेर दे उस तंदूर दरम्यान।
तंदूर झट गड़वा दीया और लकड़ों की कर दी आंच।
सुर्ख तंदूर हो गया और फकर से करे सवाल :
"जा, बे फकर, हट जा : नहीं, जळ बळ हो जाएगा राख।"
"धुर मक्का से आ गया लेण तेरा दीदार।"
इतनी सुणकर जळ गई, तन मन लग गई आग।
बांध मशकान गेर दीया उस तंदूर दरम्यान।
सारा शहर रो रहा, लोहारी से करे सवाल :
"ऐ, लोहारी, तैं क्या करा, फकर दीया मरवाए ?"
हुक्म हुआ दरगाह से धूंए को वट दिए चढ़ाए।
कजली बण में सो रहे रोडे शाह फकीर।
लोहारी जलाली बोलती, "सुण, बाबल, मेरी बात ;
इस सारी राख को समुन्दर में दईयो बहाओ।
अब इस फकर की चुक लीए कैसे लेगा दीदार ?"
इतनी सुण कूण्डी सोण्टा बोलदी लोहारी से कीए जवाब :
"तू कैसी नाहीं कर रही ? फकर लेगा दीदार।"
इतनी सुणके बोलदी लोहारी करी जवाब :
"राख थी बहा दी, अब तीजा दूं करवाए।"
उसी वक्त लोहारी ने डेगां दी चढ़वाए।
शहर में ढंढोरा दे दीया, और फकीर लीए बुलवाए।
सतरांजीआं भिच्छा दीए, फकीर बैठे आए।
कुण्डी सोण्टा सोचदे रहे ना आए रोडे शाह फकीर।
हुक्म हुआ दरगाह से, ना आए रोडे शाह फकीर।
हुक्म हुआ दरगाह से, रोडे शाह के खुल गए आंख :
"तुम, फकर, क्या सो रहे ? थारा तीजा हो रहा आज।"
इतनी सुण रोडे शाह चल पड़े, आए लोहारी के पास।
मजलिस लग रही दरबार में : आ रोडे शाह करे सवाल :
"दे दीयो, लोहारी जलाली, अल्लाह की पियारी, फकर नूं दे दीदार।"
इतनी सुणकर लोहारी जलाली करे सवाल :
"देखीयो, फकर नहीं, कोई औलिया : फकर बुरे बुलाए।
मेरा सिंगार ले जा, और फकर नूं दे दीदार।"

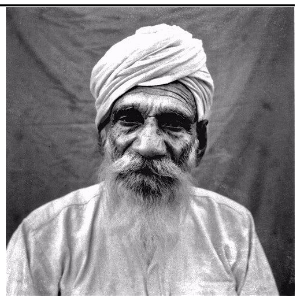
पहिन सिंगार, कमाली निकल पड़ी, आई फकर के पास :
" ऐ, फकर, दीदार ले, खड़ी जलाली तेरे पास।"
इतनी सुणकर फकर बोलदा जलाली से करे सवाल :
"जे तू माई जलाली है, तो तेरे चेहरे पर बरसीयो नूर :
जे तू फकर नूं ठग रही, तेरी हो जा रूह से बे-रूह।"
हुक्म हुआ दरगाह से, हो गई रूह से बे-रूह।
रोंदी पाटदी आवंदी, आई जलाली के पास :
"भली चाहीए दीदार दे : और नहीं, हो जाएगी रूह बे-रूह।"
देख सूरत जलाली रो पड़ी, नठ भजके आ गई उस फकर के पास :
"आ, बे फकर, दीदार ले ले, खड़ी जलाली तेरे पास।"
"यूं तो दीदार ना लेऊं : येह है फकर का जवाब।
महल पर अपने चढ़ जा, और सिर पे साही तार।
देणा दीदार, बीबी, और सिफत करूं तेरा जग मान।"
इतनी सुणकर रो पड़ी, करे फकर का सवाल :
"ऐसी बातें मत कहो ; राखो परदा तुम आप।"
"इन बातों से ना हटूं : ये फकर का सवाल :
छज्जे ऊपर खड़ी हो, देखे कुल संसार।"
इतनी सुणकर चढ़ गई वोह चातर सी नार।
रोडे शाह बोलदा, "सुणो, शहर के लोग,
जलाली चढ़ गई महल पर, सिर से साही दीया तार।"
दुनिया के लोग देखदे, रोडे दुलदुल लीए सिंगार।
झट सवार उस दुलदुल पर आप :
" सूरत तेरी बहुत है और तू चातर सी नार :
हम चले मक्का शरीफ को, तू रहे आबाद।"
इतनी सुण लोहारी ने ऊपर से मारी छाळ ;
झटदे से दुलदुल पकड़ लीए, और फकर करे सवाल :
"या तू मुझ को ले चल ; नहीं, खाकर मरूं कटार।"
इतनी सुण रोडे शाह फकीर लोहारी से करे सवाल :
"हम फकर, दरवेश हैं, तेरा हमारा क्या साथ ? "
" चीटक, फकर, ला चला, अब जीणे की क्या आस ?
या चलूं तेरे साथ ; नहीं, खाकर मरूं कटार ।"
इतनी सुण फकर ने झट ले ली अपणे साथ।
लेकर फकर चल पड़े, पड़ी लांबी राह।
राह में फकर जंगळ आ गए, डेरे दीए लगाए।
इस जंगळ के बीच में बैठे दोनों आ।
जलाली को ले आए मक्का के दरम्यान।

दुलदुल – खच्चर
बिस्मिल्लाह – अल्लाह के नाम पर किसी नई चीज की शुरुआत करना
चार यार – अबू बकर, ऊमर, ऊस्मान और अली

गदर पार्टी के पहले प्रधान सोहन सिंह भकना

उनके 150वें जन्मदिवस पर हम उनको सैल्यूट करते हैं

◆ **बूटा सिंह सिरसा**



देश के आजादी आंदोलन में गदर पार्टी की भूमिका को इतिहास में वह स्थान नहीं दिया गया जो मिलना चाहिए था। पंजाब व पंजाबी भाषायी क्षेत्र के बाहर बहुत कम लोग गदर पार्टी के बलिदानों से परिचित हैं। 1 जनवरी 2020 गदर पार्टी के पहले प्रधान सोहन सिंह भकना का 150 वां जन्म दिन है। उनका जन्म अमृतसर के पास एक गांव भकना में 1 जनवरी 1870 को हुआ। उनके पिता का नाम कर्म सिंह एवं माता का नाम राम कौर था। जब उनकी आयु मात्र 1 वर्ष की थी तो उनके पिता का देहांत हो गया। उन्होंने गांव के गुरुद्वारा के ग्रन्थी से गुरुमुखी पढ़ना सीखा एवं मदरसे से उर्दू सीखी। सोहन सिंह भकना पर उनकी जवानी के समय में नामधारी संत बाबा केसर सिंह जी का बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ा। उनके प्रभाव से उन्होंने जवानी के समय की बहुत सारी बुराइयों को छोड़ दिया। अपने परिवार की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण उन्होंने अमेरिका जाने का फैसला किया। उस समय पासपोर्ट वगैरह की जरूरत नहीं होती थी। वे समुंद्री जहाज के माध्यम से हांगकांग होते हुए अमेरिका गए। यह उनकी सीखने की इच्छा ही थी कि उन्होंने समुद्री जहाज के एक महीने के सफर के दौरान पंजाबी-अंग्रेजी डिक्शनरी से अंग्रेजी के काफी शब्द सीख लिए। 4 अप्रैल 1909 को अमेरिका के शहर सियाटल में पहुंचे। पूंजीपतियों की लूट के बारे में वे 'जीवन संग्राम' पुस्तक में लिखते हैं कि " एक और बात याद रखने वाली है कि "मुनाफाखोर का देश, कौम या भगवान किसी के साथ भी प्यार नहीं होता। उसका देश, कौम व भगवान सब कुछ रुपया ही होता है। जिस ढंग से भी रुपया कमाया जा सकता हो वह अपनी लालसा पूरी करने को कोई पाप नहीं समझता। इसलिए मंदी के दौर में बेरोजगार मजदूरों को कम मजदूरी पर काम पर रखकर नाजायज फायदा उठाता है।"

सियाटल से थोड़ी दूर ओरेगन प्रांत के पोर्टलैंड में कोलंबिया नदी के किनारे एक लकड़ी के कारखाने में उन्हें काम मिल गया। यह काम बहुत ही कठिन था एवं मात्र 2 डालर मजदूरी मिलती थी। उस समय अमरीका की मिलों में बहुत सारे भारतीय मजदूरी कर रहे थे। उस दौर में उनके साथ नस्लीय भेदभाव होता था अमेरिकन मजदूरों की बजाय उनको मजदूरी कम मिलती थी। अमेरिकी मजदूर अक्सर ही विदेशी मजदूरों पर हमले करते थे। इन हमलों के दौरान विदेशी मजदूरों को पीटा जाता उनसे पैसे छीन लिए जाते हैं उनको दूर जंगल में छोड़ दिया जाता। जब मजदूर इन हमलों की शिकायत लेकर अधिकारियों के पास जाते तो वहां भी उनकी कोई सुनवाई नहीं होती थी क्योंकि भारत गुलाम होने के कारण सरकार की तरफ अपने देश के प्रवासियों के पक्ष में कोई कार्यवाही नहीं की जाती थी। इन हमलों और नस्लीय भेदभाव ने मजदूरों को एक-दूसरे से वार्तालाप करने का मौका दिया व एक-दूसरे के नजदीक लाने का काम किया। उनमें दूसरे देश के मजदूरों के प्रति हमदर्दी की भावना पैदा हुई। कारखाने का मालिक जब किसी मजदूर के साथ अन्याय करता तो सभी मजदूर उनका साथ देते। इसी जागृति से संगठित होने का रास्ता निकला। काफी प्रयासों के मार्च 1913 के दूसरे सप्ताह पोर्टलैंड के आसपास के सभी कारखानों के मजदूरों की मीटिंग बुलाई गई। इसमें परमानंद लाहौर व लाला हरदयाल विशेष रूप से पहुंचे। 'हिंदी एसोसिएशन आफ पेसिफिक कोस्ट' का गठन किया गया। इसके प्रधान सोहन सिंह भकना, उपप्रधान भाई केसर सिंह ठठगढ़, महासचिव लाला हरदयाल, संयुक्त सचिव ठाकुरदास व कोषाध्यक्ष पंडित काशीराम चुने गये। एसोसिएशन द्वारा जो सर्वसम्मति से जो फैसले लिए गए उनसे पार्टी की धर्मनिरपेक्ष नीति, त्याग, प्रतिबद्धता व समर्पण का पता चलता है। उनमें मुख्य फ़ैसले निम्नलिखित थे

- पार्टी का उद्देश्य सशस्त्र संघर्ष से देश को आजाद करवाना एवं आजादी के बाद आजादी और बराबरी के आधार पर लोकराज स्थापित करना
- पार्टी का एक साप्ताहिक अखबार निकलेगा, जिसका नाम 1857 की याद में 'ग़दर' अखबार होगा
- संगठन का चुनाव प्रत्येक वर्ष होगा

- प्रत्येक मेंबर कम से कम एक डालर प्रति महीना चंदा देगा
- पार्टी में धार्मिक वाद-विवाद के लिए कोई स्थान नहीं होगा। धर्म प्रत्येक व्यक्ति का निजी मामला होगा
- पार्टी का मुख्यालय सान फ्रांसिस्को (कैलिफोर्निया) में होगा
- पार्टी के हर सिपाही का यह कर्तव्य होगा कि वह चाहे दुनिया के किसी कोने में हो , वह गुलामी के विरुद्ध आजादी के लिए संघर्ष करे
- पार्टी के कार्यालय, प्रेस, अख़बार या गाँव में काम करने वाले किसी सदस्य को वेतन नहीं मिलेगा। बराबरी के आधार पर रोटी कपड़ा पार्टी के सांझे लंगर व स्टोर से मिलेगा।

1 नवंबर 2013 से ग़दर अखबार प्रकाशित होना शुरू हुआ। इसके पहले संपादक लाला हरदयाल थे वे उर्दू में लिखते थे। करतार सिंह सराभा उसे पंजाबी में अनुवाद करते और हैंड मशीन से उसे छापते थे। पहले अख़बार उर्दू व पंजाबी में छपता था। उसके बाद अखबार के हिंदी, गुजराती व नेपाली भाषाओँ में विशेष अंक भी छापे गये एवं हैंड मशीन की जगह बिजली से चलने वाली मशीन लगाई गई। पार्टी का कार्य बढ़ जाने के बाद सोहन सिंह भकना अपना निजी काम छोड़कर पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में पार्टी के लिए काम करने लगे। कनाडा, अर्जेंटीना, वर्मा, फिलीपींस व सिंगापुर तक गदर अखबार पहुंचने लगा एवं एसोसिएशन की यूनिट बन गई। उस समय तक विभिन्न देशों के अनेक कारखानों में 72 यूनिट बन चुकी थी। लाला हरदयाल के अमेरिका से चले जाने के बाद कामरेड संतोख सिंह महासचिव बने। सशस्त्र संघर्ष के लिए पार्टी की तरफ से सैनिक प्रशिक्षण का भी प्रबंध किया गया। पार्टी के दो सदस्यों करतार सिंह सराभा और मास्टर उधम सिंह कसेल को इस कार्य के लिए भेजा गया। करतार सिंह सराभा हवाई जहाज उड़ाने की ट्रेनिंग लेने लगे।

23 मई 1914 को कामागाटामारू जहाज भारतीयों को लेकर कनाडा पहुंचा, लेकिन कनाडा सरकार ने जहाज को बंदरगाह पर आने से मना कर दिया और कई महीनों तक जहाज समुद्र में ही खड़ा रहा। जहाज के यात्रियों के लिए कनाडा में रहने वाले भारतीयों ने एसोसिएशन के बैनर तले संघर्ष किया व सहायता राशि एकत्र की गई। उसके बाद कनाडा सरकार ने 23 जुलाई 1914 को जहाज को वापस जाने के लिए यात्रियों का राशन व हर्जाना देना मान लिया। एसोसिएशन की तरफ से सोहन सिंह भकना को जिम्मेदारी दी गई कि वे एक दूसरे जहाज से इस जहाज के साथ जाए व जहाज के यात्रियों को पार्टी लाइन के बारे में तथा भारत में जाकर प्रचार करने तथा सशस्त्र संघर्ष के बारे में बताए। सोहन सिंह भकना 200 पिस्तौल एवं 2000 गोलियां लेकर योकोहामा होते हुए हांगकांग के रास्ते से पिनांग (मलेशिया) पहुंचे। तब तक अंग्रेज सरकार को सीआईडी के माध्यम से पता चल चुका था एवं कामागाटामारू जहाज के साथ कोलकाता में 'बजबज घाट' की घटना घट चुकी थी। बंगाल की खाड़ी में ही पंजाब पुलिस सोहन सिंह भकना वाले जहाज में पहुंच गई एवं उनको कोलकाता से गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें लुधियाना के रास्ते मुल्तान जेल में भेज दिया गया। यहीं से उनका जेल जीवन शुरू हुआ।

इस दौरान ही मूला सिंह, अमर सिंह व नवाब खां ने गदारी की तथा वे सरकारी गवाह बन गये। इस कारण बहुत सारे गदरी गिरफ्तार कर लिए गए। इन सभी पर पहला लाहौर साजिश केस अप्रैल 1915 में शुरू हुआ। अंग्रेज सरकार ने जेल के अंदर ही ट्रिब्यूनल का ड्रामा करते हुए 24 देशभक्तों को फांसी की सजा सुनाई। 16 नवम्बर फांसी की तिथि तय हो गयी लेकिन एक दिन पहले 17 गदरी क्रांतिकारियों की फांसी की सजा को उम्रकैद में बदल दिया गया। करतार सिंह सराभा एवं छह अन्य को फांसी दी गई करतार सिंह सराभा की उम्र उस समय 19 वर्ष की थी। उम्र कैद वाले क्रांतिकारियों को अंडेमान की सेल्यूलर जेल में भेज दिया गया। वहां पर उन पर बहुत सारे अमानवीय अत्याचार किए एवं ऐसी कठिन मुशक्कत करवाई गई जैसा पशुओं से भी नहीं करवाया जाता। वे अक्सर ही विरोध करते व उनको बेंतों की सज़ा दी जाती। लेकिन इन क्रांतिकारियों ने इतने अत्याचारों के बावजूद अपने हौसले बुलंद रखे एवं संघर्ष की नई मिसाल कायम की। उन्होंने जेल में भूख हड़तालें की और इन सालों के दौरान कुछ गदरी बाबे अपनी जान कुर्बान कर गए। सोहन सिंह भकना अपनी जीवनी 'जीवन संग्राम' में लिखते हैं कि "हमारे होते हुए विनायक सावरकर अंडमान में हमारे साथ थे। पुणे की यरवदा जेल में रिहाई के लिए लाए गए। इनकी सेहत बहुत कमजोर हो चुकी थी एवं कुछ शर्तो पर रिहा किए गए।" 1921 में सोहन सिंह भकना को कुछ साथियों के साथ कोयंबटूर जेल में भेज

दिया गया। इसके अतिरिक्त कुछ कैदी यरवदा जेल से पंजाब भेजे गए। 1928 की सर्दियों में सोहन सिंह भकना और केसर सिंह को लाहौर सेंट्रल जेल में भेज दिया गया

उस समय भगत सिंह व उसके साथियों को सुनवाई के लिए बोर्स्टल जेल से सेंट्रल जेल में लाया जाता था। इस दौरान बाबा सोहन सिंह भकना की कई बार भगत सिंह से मुलाकात हुई। जब भगत सिंह और उसके साथियों ने जेल में भूख हड़ताल शुरू की तो बाबा सोहन सिंह भकना ने भी उनके समर्थन में चौथी बार जेल में भूख हड़ताल की। वह अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि "भगत सिंह 6 फुट लम्बा बहुत खूबसूरत नौजवान था। वह निडर जरनैल दार्शनिक और ऊँची राजनैतिक सूझ रखने वाला था। देशभक्ति के साथ-साथ दुनिया भर की पीड़ित जनता का दर्द उसके दिल में कूट-कूट कर भरा हुआ था।" जब अंग्रेज सरकार ने सोहन सिंह भकना को उनकी उम्र कैद पूरी होने के बावजूद भी रिहा नहीं किया तो उन्होंने फिर भूख हड़ताल का नोटिस दे दिया एवं 2 महीने तक भूख हड़ताल की। ज्यादा सेहत खराब होने पर मेयो अस्पताल में दाखिल किया गया। अंग्रेज सरकार ने शर्तों के साथ रिहा करने को कहा तो उन्होंने साफ मना कर दिया। जुलाई 1930 में 16 साल की कैद के बाद रिहा किया गया।

सोहन सिंह भकना रिहा होकर जब गांव में वापस आए तो उनकी माताजी की मौत हो चुकी थी। उनकी धर्म पत्नी अपने मायके में दिन काट रही थी। गांव के पुराने लोगों को छोड़कर नौजवान उनको पहचानते नहीं थे। यहां तक कि वे अपने घर का रास्ता भूल गए। मकान मात्र मिट्टी का ढेर बन चुका था। लेकिन उसके बाद भी चुप करके नहीं बैठे। 1939 में जब अंडेमान की सेल्यूलर जेल में देश भक्तों द्वारा भूख हड़ताल की गई तो सोहन सिंह भकना ने जलियाँवाला बाग में उनके समर्थन में भूख हड़ताल की। वे 1940 में अखिल भारतीय किसान सभा के अध्यक्ष बने। 1940 में उनको फिर नजर बंद करके देवली कैंप भेज दिया गया और 1943 में रिहाई हुई। जब उनके गांव में हाई स्कूल के लिए जमीन की मांग उठी तो सोहन सिंह भकना ने अपनी साढ़े आठ एकड़ जमीन हाई स्कूल के लिए दे दी। अपना जद्दी मकान को बेचकर एवं गाँव से चंदा इकट्ठा करके लड़कियों के लिए पाठशाला खोल दी। वे स्वयं अपने खेत में झोपड़ी बनाकर रहने लगे। सड़क के साथ लगती साढ़े आठ एकड़ से ज्यादा जमीन में किरती किसान आश्रम बना दिया गया एवं देशभक्तों के बच्चों को वहां लाकर रखा जाने लगा।

देश की आजादी के समय 1947 में जब पंजाब में धर्म के आधार पर लोगों की मारकाट हो रही थी तो सोहन सिंह भकना और अन्य क्रांतिकारियों ने अनेक गांव में मुसलमानों की जान बचाई एवं उनको सुरक्षित भेजा। दुख की बात यह है कि देश आजाद होने के बाद भी उनको 1948 में अन्य कम्युनिस्टों के साथ भकना गांव से गिरफ्तार कर लिया गया और योल कैम्प भेज दिया गया। उन्होंने वहां भी भूख हड़ताल कर दी और यह भूख हड़ताल 28 दिन तक चली। जब जवाहरलाल नेहरू के पास देश भक्त परिवार सहायक कमेटी के प्रधान संत विसाखा सिंह के माध्यम से बात पहुंची तो तीन-चार दिन बाद उनको रिहा किया गया। यह उनके जीवन की सातवीं भूख हड़ताल थी। इस भूख हड़ताल के बाद उनकी कमर झुक गई। इसके बाद उन्होंने जालंधर में देश भगत यादगार हाल बनाने का फैसला लिया एवं देश भगत यादगार कमेटी बनाई गई। 1964 में गदर पार्टी की गोल्डन जुबली मनाई गई।

बाबा जी अपनी पुस्तक 'जीवन संग्राम' में लिखते हैं कि "बुढ़ापे में आराम और बेफिक्री की गारंटी समाजवादी व्यवस्था के बगैर कोई नहीं दे सकता।" एक जगह वह लिखते हैं "कि यह मेरा पक्का निश्चय है कि जब तक अर्थव्यवस्था की बुनियाद समाजवाद नहीं असली आजादी एक सपना ही रहेगी।" 20 दिसंबर 1968 को महान देशभक्त गदरी बाबा सोहन सिंह भकना की 98 वर्ष की आयु मृत्यु हो गई। वे इस दुनिया से शारीरिक रूप से तो चले गए लेकिन उनके संघर्षों की गाथा आने वाली पीढ़ियों को प्रेरणा देती रहेगी।

संदर्भ पुस्तक :

जीवन संग्राम (आत्मकथा बाबा सोहन सिंह भकना)

संपर्क - 981341696

गुलामी चाहे देशवासियों की थोपी हो या विदेशियों की, आर्थिक हो चाहे राजनीतिक, चाहे धर्म (सांप्रदायिकता) की आड़ में सामाजिक ऊंच नीच की गुलामी पैदा की जाए, यह सब पापों से बड़ा पाप है। मानवता को कत्ल करने से बड़ा पाप और क्या हो सकता है ? - सोहन सिंह भकना

एफ.आई.आर.के बारे में

◆ **राजविंदर सिंह चंदी**

यदि कोई संज्ञेय अपराध घटित होता है या उजागर होता है तो ऐसी सूचना प्राप्त होने पर पुलिस के लिए एफ आई आर दर्ज करना अनिवार्य है। पुलिस संज्ञेय अपराध घटित होने पर प्राथमिक जांच नहीं कर सकती, सूचना झूठी हो या सच्ची, विश्वसनीय हो या अविश्वसनीय। प्रस्तुत है इस संबंध में जानकारी

- पुलिस सिर्फ इस तथ्य की जांच कर सकती है कि प्राप्त सूचना से संज्ञेय अपराध घटित है या नहीं, ना कि सूचना झूठी है, का सत्यापन करना। एफ.आई.आर. दर्ज करने के बाद तथ्यों की जांचा जायेगा कि वह झूठे है या सच्चे हैं।

- अगर स्पष्ट हो जाये कि संज्ञेय अपराध घटित हुआ है, पुलिस एफ.आई.आर. दर्ज करने से मना नहीं कर सकती।

- एफ.आई.आर. की एक प्रति शिकायतकर्ता को पुलिस द्वारा उपलब्ध करवाना आवश्यक है। यदि जांच करने पर पता चले कि कोई अपराध घटित नहीं हुआ तो समापन रिपोर्ट की कॉपी तुरंत शिकायतकर्ता/ सूचनाकर्ता उपलब्ध करवाना जरूरी है। पुलिस कापी उपलब्ध करवाने में एक सप्ताह से ज्यादा समय नहीं ले सकती। समापन के सारे कारण विस्तार से समापन रिपोर्ट में दर्ज करने आवश्यक है।

- अगर पुलिस अधिकारी संज्ञेय अपराध घटित होने पर एफ.आई.आर. दर्ज नहीं करता तो उसके खिलाफ कानूनी कार्रवाई हो सकती है।

- संज्ञेय अपराध घटित होने की सूचना कोई भी व्यक्ति दे सकता है। पुलिस अधिकारी को संज्ञेय अपराध के घटित होने का स्वतः संज्ञान लेने का अधिकार भी है। जघन्य अपराधों जैसे कि कत्ल, अपहरण, बलात्कार, दहेज हत्या इत्यादि के घटित होने की ऑनलाइन एफ आई आर भी दर्ज हो सकती है।

- एफ आई आर बिना किसी देरी के दर्ज होनी चाहिए अन्यथा देरी से दर्ज एफ आई आर कानूनी दृष्टि से देरी की व्याख्या के अभाव में कमजोर मानी जाती है। संज्ञेय अपराध घटित होने की स्थिति में भारत के किसी भी थाने में शून्य एफ आई आर दर्ज कराई जा सकती है। जिस थाना में शून्य एफ आई आर दर्ज हुई है वह थाना, शून्य एफ आई आर को, उस थाना को भेज देगा जिस थाना के अधिकार क्षेत्र में अपराध घटित हुआ है, ताकि आगामी तफ्तीश व आवश्यक कार्रवाई शून्य एफ आई आर पर हो सके। यह शिकायकर्ता को कानून की देरी के सिद्धांत से बचने में सहयोग करती है। एफ आई आर कौन दर्ज करा सकता है

- ऐसे मुकदमे जिसकी सूचना बहुत देर बाद यानी कि 3 महीने गुजर जाने के बाद दी गई हो, उक्त मात्र उदाहरण है ना की संपूर्ण ऐसी शर्तें जो प्राथमिक जांच की आवश्यकता की ओर इशारा करती हो।

- शिकायतकर्ता और आरोपी के अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए ऐसी प्राथमिक जांच 7 दिन के अंदर की जानी चाहिए, इस तथ्य का विवरण सामान्य डायरी में दर्ज होना आवश्यक है। अगर शिकायतकर्ता/ सूचनाकर्ता द्वारा की गई शिकायत झूठी पाई जाती है तो उसके खिलाफ झूठी शिकायत करने का अपराधिक मुकदमा दर्ज किया जा सकता है।

सम्पर्क - 9416271188

<u>लघुकथा</u>

गुड्डे को सॉरी बोलो

◆ **मनोज चौहान**

ऑफिस से लौटकर और हाथ - मुहं धोकर जैसे ही नरेन चाय पीने बैठा तो उसने देखा कि पास ही 3 साल की बिटिया शिवन्या अपने खिलौने से खेलने में व्यस्त थी।हमेशा की तरह उसने रिमोट पर अपना हक जमाया हुआ था।

नरेन के टीवी का रिमोट मांगने पर नन्ही शिवन्या ने कहा कि पापा पहले ,मेरे गुड्डे को सॉरी बोलो। कल आपने उसे बेड से नीचे गिराया था। नरेन बेटी के कोमल मनोभाव व निर्जीव खिलौने के प्रति संवेदनशीलता देखकर दंग रह गया। वह मुस्कुरा दिया और उसने उपक्रम करते हुए प्लास्टिक के खिलौने (गुड्डे) को सॉरी बोला तो शिवन्या ने झट से रिमोट दे दिया, जबकि टीवी पर कार्टून चल रहा था।

वह मन ही मन याद करने लगा था कि उसने कब गुड्डे को बेड से गिराया था !

संपर्क - 94180365

गौस अली उर्फ गंगा बिशुन

◆ **असगर वजाहत**

पानीपत-1804

नगर से पौन मील की दूरी पर गौसिया सम्प्रदाय की दरगाह। दूर-दूर चटियल मैदान और टीले-पास में केवल एक छोटी-सी बस्ती। सैयद गौस अली का मज़ार-एक बड़ी मस्जिद, कुआं, रहने के कुछ कमरे, बरामदा और चबूतरा।

खानकाह की बस्ती के आसपास अलग-थलग दो एक घर। खानक़ाह के कुएं से सभी पानी भरते हैं - सारे घरों की महिलाएं पानी भरने यहां आती हैं, इनकी जाति और धर्म अलग-अलग हैं, लेकिन पनघट ने इन्हें एक कर दिया है।

खानक़ाही की बस्ती में एक मुसलमान घर में बच्चे का जन्म होता है, मां रूग्ण है, उसके दूध नहीं उतरा, बच्चा भूखा है। पिता (सैयद जरूल हसन) खोज में निकलता है कि कोई महिला अपना दूध पिलाकर बच्चे को बचा ले।

पनघट पर इस बात की चर्चा होती है। महिलाएं रूग्ण मां को देखने आती हैं - बच्चा रोए जा रहा है।

इन महिलाओं के साथ एक ब्राह्मणी भी है। उसके यहां अभी तीसरी बेटी ने जन्म लिया है। वह बच्चे को देखती है, झिझकती है, फिर भावावेश में बच्चे को दूध पिलाने लगती है। यह पंडित राम सनेही की पत्नी है।

नामकरण - दादी ने नेक बच्चे का नाम गौस अली रखा, पंडितन माई ने गगा बिशुन नाम दिया।

विद्यारंभ संस्कार - दादी ने कुरान पढ़ाकर विद्यारंभ संस्कार सम्पन्न किया, पंडित राम सनेही ने उसी दिन हिन्दू पद्धति से विद्यारंभ संस्कार पूर्ण कराया।

विद्यार्जन - दादी, कुरान पढ़ातीं, फारसी (सिकन्दर नामा) सिखाती: पंडित राम सनेही साथ सिद्ध चंद्रिका (संस्कृत) पढ़ाते।

18 वर्ष की आयु में यात्रा - पंडित राम सनेही और पंडिताइन माई से विदाई। पंडित जी रूग्ण हैं। उन्होंने गौस अली को गायित्री मंत्र सिखाया और विदा करते हुए कहा - 'मेरी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करना।'

गौस शाह चलते-चलते हरिद्वार पहुंचते हैं - श्रवन नाथ से भेंट। उनके घर पर अतिथि सत्कार - कुंभ स्नान की महिमा की चर्चा। पर्व के समय धोती बांधकर, तिलक लगाकर कमंडल पकड़े गौस शाह हरि की पेड़ी पहुंच जाते हैं -

एक साधु ने पूछा - 'कौन हो', उत्तर दिया-ब्राह्मण।

'कौन ब्राह्मण'

उत्तर - 'कन्नोजिया'

'तुम्हारे चोटी क्यों नहीं है'

उत्तर - 'सन्यास लिया तो आडम्बर के इस चिन्ह को समाप्त कर दिया।'

गौस शाह मंत्र पढ़ते हुए उस स्थान की ओर बढ़ते गए जहां नहाने से पंडित राम सनेही को पुण्य की प्राप्ति होगी। गंगा स्नान करते हुए एक व्यक्ति ने पहचान लिया - वह आश्चर्य चकित रह गया - घाट पर आकर वह गौस शाह से धीरे से बोला - 'मियां यहां या वहां कोई भेद है, जो अस्नान करने आ गए, कोई देख लेता तो बवन्डर खड़ा हो जाता।'

उत्तर - 'खुदा तो सब जगह एक ही है। फिर यहां और वहां की तकरार क्यों? बवंडर किस बात पर?'

पंडित - 'हर एक का धर्म अलग है, हर एक की पूजन पद्धति अलग है।'

उत्तर - 'हां, वह एक-दूसरे को झुठलाते हैं। अपने को ही सच्चा बताते हैं।'

पड़ा बुतखाना में हो या तवाज़े काब: करता हो।
यहां क्या है, वहां क्या है, कहीं हो तेरा जोया हो।

पंडित - 'काब: के बदले हरिद्वार क्यों?'

उत्तर - 'मुझे अपने मुंह बोले बाप पंडित राम सनेही की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करनी थी - बस। दूध पिलाने वाली पंडिताइन माई के तन को शांति देनी थी। हज करने में भी बात वही होती। लेकिन बात संस्कार की है। उन्हें शांति न मिलती। इसलिए हरिद्वार आया हूं।

पार कहें तो पार है और वार कहें तो वार।
पकड़ि किनारा बैठ रहिं, यहिं वार यहिं पार।

साभार : उद्भावना अंक - 2



महात्मा गांधीः भाषा, संस्कृति और भारतीयता

◆ अरुण कुमार कैहरबा

इन्द्री (करनाल) के शहीद उधमसिंह राजकीय कालेज में 'महात्मा गांधी - भाषा,संस्कृति और भारतीयता' विषय पर देस हरियाणा पत्रिका के सहयोग से दिनांक 23 फरवरी 2020 को एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। कॉलेज के प्राचार्य डॉ. राजीव गुप्ता ने वक्ताओं व अतिथियों का स्वागत किया। कॉलेज के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. कृष्ण कुमार व डॉ. सुनील थुआ ने संगोष्ठी का संचालन किया।

संगोष्ठी में देस हरियाणा के संपादक एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर डॉ. सुभाष चन्द्र ने विचारोत्तेजक बीज वक्तव्य प्रस्तुत किया। प्रसिद्ध साहित्यकार एवं भाषाविद् प्रेमपाल शर्मा ने भाषा और महात्मा गांधी विषय बोलते हुए कहा कि गांधी गुजरात से थे और अंग्रेजी भाषा भी बहुत अच्छी तरह जानते थे। लेकिन उन्होंने हिन्दी और भारतीय भाषाओं पर बल दिया। जबकि हिन्दी पट्टी के राज्य हिन्दी व मां-बोलियों को छोड़कर अंग्रेजी के पीछे भाग रहे हैं। वरिष्ठ पत्रकार प्रसून लतांत ने महात्मा गांधी की पत्रकारिता के उद्देश्यों, आदर्शों और मूल्यों को विस्तार से बताते हुए वर्तमान में पत्रकारिता की गिरती साख पर चिंता प्रकट की।

केन्द्रीय विश्वविद्यालय मोतीहारी बिहार के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र बड़गुज्जर ने समापन वक्तव्य में कहा कि गांधी और आंबेडकर को एक दूसरे के विरोधी के रूप में पेश करना अच्छा नहीं है। आंबेडकर को कानून मंत्री के रूपमें पेश करना गांधी की उदारता को परिचायक है और हमें दोनों के विचारों को अपनाते हुए समय की चुनौतियों से जूझना चाहिए।

संगोष्ठी में विभिन्न कालेजों से पधारे वक्ताओं ने महात्मा गांधी के जीवन व विचारों के विभिन्न पहलुओं पर विचार प्रकट किए। डा. रविन्द्र गासो ने पूरी संगोष्ठी की समीक्षा प्रस्तुत की। डॉ. अशोक भाटिया, डॉ. विनोद, डॉ. ओम प्रकाश करुणेश, हरपाल गाफिल, डॉ. ऋषिपाल, डॉ. शीशपाल, डॉ. जसबीर, डॉ. सुरेन्द्र कुमार, राजेश कासनिया, डॉ. इकबाल, हरीश दहिया, नवीन बतरा, बोहती, अरुण कैहरबा, सूरजभान बुटानखेड़ी, मीना उपस्थित रहे।

इस अवसर पर देस पत्रिका के संपादक प्रोफेसर सुभाष चंद्र द्वारा दिए गए बीज वक्तव्य के कुछ अंश प्रस्तुत हैं -

---

साथियो,

महात्मा गांधी का अपना साहित्य सौ वोल्यूम से भी ज्यादा है। इतने सारे अखबार, इतनी चिट्ठियां, उनके ऊपर लिखी गई जीवनियां, संस्मरण, उनके ऊपर होता हुआ निरंतर इतना मंथन और उनके अपने समय और बाद के लोगों के साथ संवाद, उन सबके बीच में बीज वक्तव्य देना भारी काम है।

महात्मा गांधी को बापू कहते हैं, राष्ट्रपिता कहते हैं। इसके ऊपर भी विवाद होते हैं। सबसे पहले नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने 1944 में सिंगापुर रेडियो स्टेशन से गांधी को पहली बार 'फादर ऑफ नेशन' कहकर संबोधित किया था, तब से यह चल रहा है। जिन्ना उन्हें मिस्टर गांधी कह कर पुकारते थे। आम लोगों को हमने मजबूरी का नाम गांधी कहते हुए भी सुना है। गांधी बनाम भगत सिंह, गांधी बनाम सुभाष चन्द्र बोस, गांधी बनाम आंबेडकर इस तरह भी गांधी को पढ़ा जाता है। पिछले दिनों गांधी के प्रति एक खास तरह की घृणा भी देखने को मिलती है, जो उनके चरित्र हनन तक जाती है। इस तरह के वीडियो और चित्र आप सोशल मीडिया पर देखते हैं। बाकायदा से उन्हें दोबारा से मारने के नाटक हो रहे हैं। उनकी जयंती 2 अक्तूबर पर उन्हें 'सिनेटरी इंस्पेक्टर' की तरह से प्रस्तुत किया जा रहा है।

जब हम देश से बाहर पैर रखते हैं और विदेशों में जाते हैं, तो दो व्यक्ति नजर आते हैं। एक महात्मा बुद्ध और दूसरे महात्मा गांधी। दो महात्मा हैं जो भारत से बाहर शोषितों के मुक्ति आंदोलन की प्रेरणा बने हैं। चाहे वे अमरीका के मार्टिन लूथर किंग हों, चाहे दक्षिण अफ्रीका के नेल्सन मंडेला हों।

मैं एक अनुभव, जो मेरा नहीं है। मेरे एक विद्यार्थी ने ने सुनाया था। उनके पिता जी कोरिया में काम करते थे। जब वे टैक्सी से उतरकर किराया देने लगे वहां टैक्सी चालक को दस का नोट दिख गया। उसने दस डॉलर के बदले में दस का नोट मांगा। उन्होंने पूछा कि ऐसा क्या है इस नोट में। तो टैक्सी चालक ने कहा कि इस नोट के ऊपर गांधी की फोटो छपी है। मैं इसको अपने पास रखना चाहता हूँ।

मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ गांधी की परंपरा की ओर। कि गांधी के बाद क्या? गांधी जैसा कोई नहीं। गांधी ने खुद ही किसी गांधीवाद के होने से इन्कार कर दिया था। गांधी के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने जो जीवन जीया, वही उनका दर्शन है। जो उन्होंने जिया, वही उनका दर्शन है। उनके जीवन से, अलग-अलग समय पर जिंदगी के बारे में की गई प्रतिक्रियाओं से, उनके आंदोलनों से, उनकी जीवन-शैली से, उनके बीच में से ही गांधी को समझ सकते हैं। इसीलिए उनमें अनेक विरोधाभास और असंगतियां भी हैं।

बहुत सारे लोग अपने-अपने तरीक से गांधी को इस्तेमाल इसीलिए कर पाते हैं कि कोई किसी जगह से उनका कोई संदर्भ उठाता है और दूसरा किसी जगह का संदर्भ उठाता है। सब अपने-अपने गांधी लिए उड़े फिरते हैं। गांधी किसी की पकड़ में नहीं आते, क्योंकि वे सब अपना-अपना फ्रेम लेकर गांधी को पकड़ना चाहते हैं। गांधी अपने दोस्तों-सहयोगियों घिरे रहते थे, उनसे पूरी तरह असहमत होते हुए भी।

लोगों ने गांधी के खादी-चरखा जैसे प्रतीक लेकर गांधी जैसा बनने की कोशिश की है, लेकिन गांधी जैसी नैतिकता और आत्मबल वो कहीं नहीं दिखाई दिया। गांधी तो प्रतीकों में नहीं होते। सबसे पहले गांधी ने निर्भय होकर जीना सिखाया। लेकिन जो गांधी जैसा जीवन जीने का दावा करते हैं, वे सत्ता से डर जाते हैं। मुझे याद है - एक बार अहमदाबाद साबरमती आश्रम में एक प्रेस कांफ्रेस हुई, जिसमें मेधा पाटेकर मौजूद थी। उस पर कुछ गुंडों ने हमला कर दिया और सबसे पहले डर कर गांधीवादी भागे। जब उनसे पूछा गया कि आप क्यों भागे? गांधी तो हमेशा आगे आते थे। उन्होंने कहा - ये तो हमें ही मार देते।

एक सवाल पूछा था गांधी ने वो मैं आपके साथ सांझा करना चाहता हूँ। अपने अंतिम दौर में गांधी बहुत दुखी थे। सांप्रदायिक दंगे हो रहे थे, दिल्ली में जैसी मार-काट मची थी। उनकी सहयोगी थी - सुभद्रा जोशी। जब सुभद्रा जोशी ने गांधी को दुखी मन और भावुकता से कहा - अनेक लोग मारे जा चुके हैं और दंगे नहीं रुके। गांधी ने पूछा था - कि स्वयंसेवक कितने मरे हैं? सुभद्रा जोशी के पास कोई जवाब नहीं था। स्वयंसेवक कितने मारे गए, ये पूछने की गांधी में हिम्मत थी। गांधी होते हैं - त्याग में, बलिदान में।

मैं गांधी के दो उद्धरण देना चाहूंगा -"मैं नहीं चाहता कि मेरे घर में सब ओर दीवारें हों और मेरी खिड़कियां बंद हों। मैं चाहता हूँ कि मेरे घर में सभी देशों की संस्कृतियों की बहारें यथासंभव स्वतंत्रता के साथ बहें। लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि उनमें से किसी के द्वारा भी मेरे पैर उखाड़ दिए जाएं।"

गांधी की जड़ें कितनी भारतीय परंपरा में थी। अपनी पहचान भी बनी रहे और हम दूसरों से सीखते भी रहें। ना कूपमंडूकता और अंधानुकरण दोनों स्वाकार्य नहीं थे गांधी को।

गांधी ने कहा था कि "धर्म राष्ट्रीयता की कसौटी नहीं है, बल्कि मनुष्य और उसके ईश्वर के बीच का मामला है। राष्ट्रीयता के मामले में वे सबसे पहले भारतीय हैं और

सबसे अंत में भारतीय हैं। वे चाहे किसी भी धर्म का अनुसरण करते हों।"

पिछले सौ-डेढ़ सौ साल से भारतीय सार्वजनिक जीवन में इस बहस गूंज सुनाई दे रही है कि धर्म का राष्ट्र से क्या संबंध हो। धर्म के आधार पर ही भारत के टुकड़े होकर दो देश बने - एक पाकिस्तान और एक भारत। उपरोक्त दो उद्धरणों से गांधी की भाषा, संस्कृति और भारतीयता के प्रति मत स्पष्ट होता है। सब जानते हैं गांधी न तो भाषाशास्त्री थे और न ही धर्मशास्त्री। लेकिन मनुष्यता व मनुष्य की गरिमा से जुड़े जितने सवाल हैं, उन सब में गांधी की रूचि थी और उन पर वे विचार करते थे।

जब मैं गांधी की भारतीयता की बात सोचता हूं तो मुझे लगता है कि मोहनदास का महात्मा बनने तक का जो सफर है, वो एक तरह से भारतीयता की तलाश का सफर है। भारतीयता की कोई बनी-बनाई परिभाषा, बनी-बनाई संरचना या परिपाटी गांधी को स्वीकार्य नहीं थी। वो निरंतर उसकी खोज करते रहे। और अब भी भारतीयता की निरंतर खोज जारी है। यही गांधी मार्ग है।

गांधी की भारतीयता के स्रोत क्या थे। इस बारे में विचार करता हूँ तो कई चीजें मुझे दिखाई देती हैं। उनमें एक स्रोत है - जनसंवाद। आप जानते हैं जब वे भारत आने पहले ही वे दक्षिण अफ्रीका में ही मशहूर हो चुके थे। उन्होंने राजनीति में सक्रिय होने की इच्छा व्यक्त की तो उन्हें गोखले जी ने सलाह दी कि पहले भारत भ्रमण करें। हालांकि मैं यह पक्के तौर पर यह बात नहीं कह सकता लेकिन मेरा ख्याल है कि गांधी आधुनिक भारत के सबसे बड़े यात्री होंगे। वे कोई मेज-कुर्सी पर बैठे-बैठे भारतीयता नहीं खोज रहे थे, बल्कि इसके लिए उन्होंने पूरे भारतवर्ष का चक्कर लगाया। और वे वहां-वहां गए, जहां-जहां लोगों को तकलीफें थीं।

सबको पता है कि गांधी से पहले किसी आंदोलन के नाम पर यहां सिर्फ एप्लीकेशन लिखी जाती थी। जिसका मंतव्य इतना ही होता था कि पढ़े-लिखे लोगों को कुछ छूट मिल जाए। गांधी के आने से ही राष्ट्रीय-आंदोलन जन-आंदोलन के रूप में बना। स्वतंत्रता की सबकी चेतना का हिस्सा बनने लगी। साधारण जन के जीवन के मुद्दों को राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जोड़ा।

जनसंवाद गांधी की भारतीयता का सबसे बड़ा स्रोत है। जो शासन-सत्ताएं लोगों से बात नहीं करना चाहती और लोगों को कुचलना चाहती हैं। वे गांधी से सीख सकती हैं। गांधी में यह अहंकार नहीं था, गांधी खुद पीड़ित लोगों से बात करने जाते थे।। गांधी का भारतीयता का स्रोत जनसंवाद या लोकसंवाद में है।

मैं देखता हूं कि गांधी के व्यक्तित्व पर लोक परंपरा का गहरा पड़ा है। जब उन्होंने अपनी आत्मकथा, अपने संस्मरण लिखे तो उसमें उन्होंने दो चीजों को याद किया। एक श्रवण कुमार की कहानी। दूसरी- राजा हरिश्चन्द्र की कहानी। सेवा और सत्य की प्राप्ति के लिए जितनी भी पीड़ा झेलनी पड़े, लेकिन उस पर डटे रहें। इन लोक कथाओं व लोक नाट्यों ने उनके जीवन पर स्थायी छाप छोड़ी।

नरसी भगत का गीत 'वैष्णव जन तो तेणे कहिए, जो पीड़ पराई जाने रे' उनका जीवन गीत बन गया। हमारी संत-भक्त परंपरा - कबीरदास, रैदास, गुरूनानक, मीरा - इसमें गांधी की भारतीयता की जड़ें हैं। यहां पर तलाश की उन्होंने भारतीयता। आम भारतीय जन जब अपने आप को अभिव्यक्त करते हैं, जब खुद को देखते हैं तो वे इनमें देखते हैं। गांधी की भारतीयता का स्रोत है यह। महावीर जैन से अहिंसा को प्राप्त किया और महात्मा बुद्ध से करुणा को। इस तरह गांधी की भारतीयता और इन्सानियत एक दूसरे के पर्याय हैं। आप बेहतर इन्सान होकर ही सच्चे भारतीय हो सकते हैं।

गांधी ने सच्चा भारतीय होने और इन्सान होने के कुछ तरीके खोजे और आजमाए। उनमें से एक है - सत्याग्रह। सत्य के लिए आग्रह करना, जिद्द करना और सत्य के लिए डट जाना। बिना किसी भय और घृणा के और पूरी तरह से झूठ का त्याग करके। सत्याग्रह गांधी की सबसे बड़ी देन मानी जाती है। दुनिया में जितने भी महापुरूष हुए हैं, वे सत्य की बात करते हैं। महात्मा फुले ने भी सत्यशोधक समाज बनाया और स्वामी दयानंद सरस्वती सत्यार्थप्रकाश लिखा।

सत्याग्रह का मतलब है - झूठ और सत्य की छंटनी करना। क्योंकि सत्य का चोला धारण करके ही झूठ की लीला होती है। हमारे समाज में जिस तरह से झूठ का साम्राज्य बढ़ रहा है कि ओक्सफॉर्ड डिक्शनरी ने चार-पांच साल एक शब्द बनाया किया - पोस्ट ट्रूथ ऐज। यानी हम सत्य के बाद के युग में जी रहे हैं। जिस तरह से संस्थागत तौर पर झूठ बनाने और प्रसारित करने का धंधा जोरों पर है। वह हमारे दिलों-दिमागों को प्रदूषित कर रहा है।

सत्य के लिए उन्होंने ईश्वर की परिभाषा बदल दी। कहा जाता था कि 'ईश्वर ही सत्य है' और गांधी ने बदल



कर कहा कि - 'सत्य ही ईश्वर है'। यदि आप ईश्वर को प्राप्त करना चाहते हो तो सत्य को प्राप्त कीजिए। यदि आप ईश्वर के खोजी हो तो सत्य की खोज करिए। झूठ इन्सानियत, भारतीयता और भारतीय समाज के लिए एक विष-बेल है। क्योंकि झूठ की बुनियाद पर आप कुछ भी रचनात्मक और सकारात्मक पैदा नहीं कर सकते। आज बड़ी-बड़ी शासन-सत्ताओं के द्वारा बड़े-बड़े झूठ बोले जा रहे हैं। ऐसे में गांधी का सत्याग्रह स्वयंमेव ही प्रासंगिक हो जाता है।

दूसरी चीज है - असहयोग। गांधी इस बात को जानते थे कि हम बुराईयों व अन्याय को रोक नहीं सकते तो कम से कम असहयोग तो कर सकते हैं। अन्याय और बुराई के खिलाफ असहयोग करेंगे। उसके भागीदार नहीं बनेंगे। अन्याय से असहयोग और न्याय के लिए संघर्ष। जब न्याय को सत्य के साथ जोड़ देते हैं तो फिर एक बड़ी लड़ाई की याद दिलाता है। दुनिया में न्याय स्थापित हो जाए तो कोई समस्या ही नहीं रहेगी। यदि न्याय होगा तो अपने-आप शांति हो जाएगी। गांधी ने संदेश है कि यदि आपको शांति चाहिए तो आप न्याय की बात करो। यदि आप शांति प्रेमी हैं तो आप न्याय-प्रेमी होना उसकी पहली शर्त है। भारत का स्वतंत्रता आंदोलन अन्याय के खिलाफ था

तीसरी चीज है - त्याग और बलिदान। कि सच्चाई और न्याय के लिए जान की बाजी लगा देना। गांधी की मृत्यु तो 1948 में हुई लेकिन बार-बार कितनी ही बार उन पर जान लेवा हमले हुए। अनेक बार उनको मारने की कोशिशें हुई और वो बिना डरे और झुके निरंतर उस बात पर चलते रहे, क्यों? क्योंकि वो मानते थे कि जो मैं कर रहा हूँ वह सच्चाई के लिए है। अहिंसा कोई डर की बात नहीं थी। उन्होंने कहा कि अहिंसा ताकतवर का औजार है। दया, प्रेम, क्षमा व करुणा अहिंसा में शामिल होनी चाहिएं। यह अहिंसा शरीर का गुण नहीं है - यह हृदय का गुण है।

एक चीज है - स्वदेशी। आज चर्चा का विषय बना हुआ है - वैश्वीकरण बनाम स्थानीयकरण। स्वदेश मतलब अपने निकट के वातावरण से जुड़ना, चाहे वह भाषा है, संस्कृति है, वस्तुएं हैं चाहे बाजार है। उसके साथ जुड़ाव है।

सबसे महत्वपूर्ण बात है - गांधी की प्रश्नाकूलता। सवाल उठाना जो भारतीयता की मूलभूत पहचान है। भारत के षडदर्शन, महात्मा बुद्ध, महावीर जैन, कबीर आदि एक प्रश्नों की शृंखला ही है। वे प्रश्न ही पूछते रहे हैं, जो सत्तासीनों से। प्रश्न पूछने और उस पर विचार करने की एक बहुत ही समृद्ध परंपरा है। सवाल पूछे गए तभी तो इतने दर्शन यहां विकसित हुए। यह जो प्रश्नाकूलता है। प्रश्न वेदों से शुरू होता है कि मैं कौन हूँ? मैं कहां से आया हूँ। मुझे कहां जाना है। सच क्या है? झूठ क्या है? यहां से शुरू होता है। आपको जो दे दिया गया है, उसके अनुसार आप जी लीजिए। यह गांधी मार्ग नहीं है। गांधी की जड़ें प्रश्नाकूलता में हैं।

बहुत दुबले-पतले और बहुत पतली सी आवाज वाले गांधी में ताकतवर शासन-सत्ताओं और कथित महामानवों से प्रश्न पूछने और सवाल उठाने की इतनी हिम्मत, इतना नैतिक बल कहां से आया। वे बड़े-बड़े वायसराय व गवर्नर जनरल से, बड़े-बड़े हिटलर से सवाल करते हैं। मैं यह बात सोच रहा हूँ कि प्रश्न पूछने की पूरी महान भारतीय परंपरा उनके साथ है।

एक चीज थी - वैसुधैव कुटुंबकम्। सारा विश्व एक है, जो भारतीय परंपरा की पहचान थी, जो आज पीछे जा रही है यह बात। वैसुधैव कुटुंबकम का क्या मतलब है- तमाम संकीर्णताओं का परित्याग करना। एक विश्व नागरिक की तरह व्यवहार करना। यही इन्सानियत गांधी की चालक

शक्ति थी। जिसे अन्त:प्रेरणा भी कहते हैं। आत्मा की आवाज से बोलना। बिना किसी डर के अन्त:प्रेरणा से निर्णय लेते थे। उनकी अंत:प्रेरणा का आधार वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा थी। गांधी खतरा उठाकर 'पागल भीड़' के चले जाते थे। यह डर नहीं था कि ये हिन्दू हैं मुझे मार देंगे। मुस्लिम हैं मुझे मार देंगे। जो बात वो मानते थे, उसे कहते और करते थे।

धर्मांधता के खिलाफ है - वैसुधैव कुटुंबकम। गांधी का मानना था कि धर्मांधता को धर्मांधता से नहीं मिटाया जा सकता। जैसे महात्मा बुद्ध ने कहा था कि आप आग से आग को नहीं बुझा सकते। आग को आप पानी से बुझा सकते हैं। एक आंख के बदले में यदि आंख ली जाएगी तो सारी दुनिया अंधी हो जाएगी। नफरत को नफरत से समाप्त नहीं कर सकते। उसको तो प्रेम से ही समाप्त किया जा सकता है। इसी तरह धर्मांधता को धर्मांधता से समाप्त नहीं किया जा सकता। गांधी अंत:प्रेरणा से संचालित अन्तर्मुखी व्यक्तित्व हैं। अन्तर्मुखी मैं उन्हें इस रूप में कहता हूं कि वे आत्मालोचना करते थे।

गांधी की सबसे बड़ी बात है - अंत्यज। सबसे अंतिम व्यक्ति का हित ही सत्य, न्याय, विकास, नैतिकता, नीति, औचित्य की सच्ची कसौटी है। भारतीय राजनीति हो या समाज नीति अथवा अर्थनीति अंतिम व्यक्ति उसकी कसौटी नहीं बन पाया है।

गांधी के विचार जानने के लिए तरह-तरह का साहित्य है। पत्रकारों, इतिहासकारों व साहित्यकारों द्वारा अनेक भाषाओं में अनेक जीवनियां, उपन्यास कविताएं भी लिखी गई। आखिर में मैं एक बात कहना चाहता हूँ। गांधी भारतीयता एक तलाश निरंतर तलाश करते रहे जो उनकी सोच, उनकी नैतिकता में और उनके कामों में दिखाई देती है। उसे पुनर्जीवित करने और अपने बापू गांधी को पुनःप्राप्त करने की जरूरत है। 2 अक्तूबर के दिन उनके नाम पर झाड़ू उठाकर स्वच्छता का पाखण्ड करने काम नहीं चलेगा बल्कि गांधी को एक चिंतक के तौर पर एक विचारक के तौर पर हमारे अध्ययन और संस्कारों में दाखिल करने की जरूरत है।

संपर्क - 9466220145

दो कविताएं

पतंग

वंदना रानी

उड़ती है ऊंचे नभ में
रंग-बिरंगी ये पतंग
और अपने कोमल हाथों से
उड़ाते हैं बच्चे ये पतंग
बसंत के मौसम में
खिलखिलाते हुए बच्चे उड़ाते हैं पतंग
जिन्हें जग की कोई परवाह नहीं
और क्षुब्ध होकर उड़ाते हैं पतंग
पृथ्वी के प्रत्येक कोने में
खिलखिलाकर उड़ाते हैं पतंग
लड़कियों को करते हैं मना
पतंग उड़ाने से
फिर भी लड़कियां पतंग से भी ऊंची
उड़ती हैं नभ के कोने-कोने में

कक्षा- 12, रा. वरि. मा. विद्यालय, कैंप (यमुनानगर)

पतंग

काजल

सर सर सर सर उड़ी पतंग
फर फर फर फर उड़ी पतंग
खूब किया आसमान में सैर-सपाटा।
बच्चे आकाश में पतंग उड़ाते हैं
इतने मगन वो हो जाते हैं
अपने आगे पीछे वो कुछ नहीं देखते हैं
बस पतंग ही उड़ाते हैं।
लडक़ी को हो अगर पतंग उड़ानी
जहां मरजी से वो लाकर उड़ाती है
कितना संघर्ष वो करती
लेकिन पतंग वो जरूर उड़ाती है
मम्मी रोके पापा रोके
रोके सारी दुनिया
लेकिन रूकती नहीं हैं ये लड़कियां
जितना राकोगे उतना उड़ेंगी ये लड़कियां
आसमान में छा जाएंगी ये लड़कियां
पतंग से भी ऊंची उड़ जाएंगी ये लड़कियां

कक्षा- 12, रा. वरि. मा. विद्यालय, कैंप (यमुनानगर)

चिट्ठियां

प्रिय सुभाष चन्द्र जी,

सर्व प्रथम तो मैं रामकुमार आत्रेय जी के दुखद निधन पर अपनी शोक संवेदना पत्रिका के पाठकों के साथ साझा करना चाहूँगा। उनका यूँ चले जाना हरियाणा के ही नहीं देश के हिन्दी साहित्य जगत के लिये अपूरणीय क्षति है।

देस हरियाणा का बालमुकुन्द विशेषांक समय पर मिल गया था। आपने अपने संपादकीय में युग की इस विडम्बना की ओर ठीक ही संकेत किया है कि गुप्त जी एवं हाली जैसे जनपक्षीय साहित्यकारों के साथ सरकारों द्वारा उचित रवैया नही अपनाया गया यद्यपि उनके नाम से पुरस्कार आदि ख़ूब दिये गये। इस अंक में उनके जीवन खंड व मूल्याँकन खंड के सभी लेखकों द्वारा गुप्त जी के व्यक्तित्व व कृतित्व पर समुचित जानकारी भी दी गयी है तथा विशद विवेचन भी किया गया है ख़ासतौर पर शम्भु नाथ के चिट्ठे को ले कर। उनके जोगीड़ा और टेसू गीत तो व्यंग्यात्मक शैली के कारण चकित भी करते है चिट्ठों की तरह। पृष्ठ 21 पर गुड़ियानी स्थित उनकी पुरानी हवेली के दर्शन मैंने भी किये हैं, हरियाणा साहित्य अकादमी के तत्कालीन निदेशक देश निर्मोही के साथ। दिल्ली यूनि की कुमुद शर्मा का बीज वक्तव्य तो कमाल का था वहाँ, और शोधपरक भी। चन्द्र त्रिखा जी जी भी बहुत अच्छा बोले थे। तब मुझे स्वयं लेखक होने पर गर्व भी हुआ और एक सुखद सी कुछ अनुभूति हुई कि मैं गुप्त जी नाम पर दिये गये सम्मान से सम्मानित हुआ हूँ। ऐसे दु:साहसी गुप्त जी को बार बार नमन।

अमृतलाल मदान, कैथल, 9466239164

◆◆◆

देस हरियाणा पत्रिका न सिर्फ़ एक बारगी हाथ में आते ही स्फूरणा से भरती है, ये चुनौती भी देती है हमारी समझ को, अपने ठेठ लहजे में। मन में जिज्ञासाएँ तो सदैव रही पर आराम से बैठकर चीज़ों को समझ पाने का अवकाश जैसे कभी हुआ नहीं। अब सरकारी स्कूल में अध्यापन करता हूँ तो बहुत बार जीवन बहुत छोटे से दायरे में डोलता सा लगता है, पर 'देस हरियाणा' एक उम्मीद देती है नई दृष्टि की। हमारे सुस्त पड़े विचार चक्र को जैसे एक स्नेहक बन चलायमान कर देती है।

इस पत्रिका से अपनी मिट्टी की ख़ुशबू तो आती है पर यहाँ परम्पराएँ कुछ प्रतीक भर नहीं जैसे उनके पीछे के प्रेरक व्यवहार रहते हैं। स्थानीय चीज़ों को वैश्विक की तरह से और वैश्विक घटनाक्रम को स्थानीय, एक निज के से अनुभव की तरह से यहाँ समझा समझाया जाता है। जो भी लोग यहाँ अपने लेख लिखते हैं, बहुत गहरे उतरे लोग हैं अपने अपने अनुभव में। उनके लेखों को प्रामाणिक बनाता है उनका जीवन दर्शन और जीवन को जीने का उनका ढंग। इसलिए इस पत्रिका के अंक केवल जानकारी नहीं देते हमें बदलते भी हैं। अबकी बार बालमुकुन्द गुप्त पर विशेषांक आया तो पहले उसे स्वयं पढ़ा और फिर इस विषय में एक साक्षात्कार किया। जोगिड़ा और टेसू के गीत मेरे लिए सर्वथा नए पर बहुत कौतुहल भरने वाले रहे। बालमुकुन्द जी की निर्भीकता हमारे में भी साहस भरती है और हमें इस बदलते परिदृश्य का केवल द्रष्टा भर ही नहीं रहने देती, चीज़ों को यथार्थ परक ढंग से समझ पाते हैं और फिर बहुत सहजता से उन्हें कह देते हैं। इस पत्रिका के माध्यम से एक पूरी समानांतर सोच बनने में मदद मिलती है। अक्सर जो मुख्य धारा के मीडिया में जन सरोकार के मुद्दे रह जाते हैं उनकी प्रतिपूर्ति होती है इस पत्रिका के ज़रिए से। सृजन की इस धारा से मैं सदैव जुड़े रहना चाहूँगा।

विकास शर्मा, स्कूली शिक्षक, कुरुक्षेत्र, 9466341200

देस हरियाणा प्राप्त करने के लिए संपर्क करें

कुरुक्षेत्र	-	विकास साल्याण	9991878352
	-	योगेश शर्मा	9896957994
यमुनानगर	-	बी मदन मोहन	9416226930
अंबाला शहर	-	जयपाल	9466610508
करनाल	-	अरुण कैहरबा	9466220145
इंद्री	-	दयालचंद जास्ट	9466220146
घरौंडा	-	राधेश्याम भारतीय	9315382236
	-	नरेश सैनी	9896207547
कैथल	-	कुलदीप	9729682692
जीन्द	-	मंगतराम शास्त्री	9516513872
टोहाना	-	बलवान सिंह	9466480812
नरवाना	-	सुरेश कुमार	9416232339
सोनीपत	-	विरेंद्र वीरू	9467668743
पानीपत	-	दीपचंद निर्मोही	9813632105
पंचकुला	-	सुरेंद्र पाल सिंह	9872890401
	-	जगदीश चन्द्र	9316120057
रोहतक	-	अविनाश सैनी	9416233992
	-	अमन वासिष्ठ	9729482329
भिवानी	-	का. ओमप्रकाश	9992702563
दादरी	-	नवरत्न पांडेय	9896224471
सिरसा	-	परमानंद शास्त्री	9416921622
	-	राजेश कासनिया	9468183394
हिसार	-	राजकुमार जांगड़ा	9416509374
महेन्द्रगढ़	-	अमित मनोज	9416907290
मेवात	-	नफीस अहमद	7082290222
शिमला	-	एस आर हरनोट	01772625092
राजस्थान (परलीका)	-	विनोद स्वामी	8949012494
चंडीगढ़	-	ब्रजपाल	9996460447
	-	पंजाब बुक सेंटर, सैक्टर 22	
दिल्ली	-	संजना तिवारी , नजदीक श्रीराम सेंटर,	
	-	आरके मैगजीन , मौरिस नगर, थाने के सामने	
	-	एनएसडी बुक शॉप	
ई-प्राप्ति	-	www।notnul।com/desharyana	